Chapter-2

:: तृतीय अध्याय ::

'वर्मा जी के उपन्यासों में चित्रित देशकाल और भारतीय समाज

साहित्य में समाज की प्रतिच्छाया मिलती है। किसी भी समाज की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक गतिविधियों का अंकन उसके साहित्य में स्पष्टरूप से मिल जाता है। इस सम्बंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मंतव्य है - "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"[1] क्योंकि एक साहित्यकार समाज में जो कुछ देखता है उसे ही अपने शब्दों में उतार कर प्रस्तुत कर देता है। साहित्य की कोई भी विधा इस तथ्य का अपवाद नहीं है। इसीलिए साहित्य की 'उपन्यास' विधा में समाज और देशकाल के चित्रण के लिए 'देशकाल और वातावरण -सृष्टि' को एक अनिवार्य तत्व माना गया है।

उपन्यास के देशकाल' के अन्तर्गत हम कथा के समस्त वातावरण को समाविष्ट कर सकते हैं। उपन्यास की रचना में पात्रों के रहन-सहन के ढंग, रीति-रिवाज, जीवन पद्धति और प्राकृतिक परिवेश या वातावरण को इसमें अन्तर्मुक्त किया जाता है।"[2] कथानक में मानव-जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित करने तथा उसके विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने के लिए इस तत्व का उपयोग किया जाता है। देशकाल के सजीव चित्रण के विषय में एक सुधी विद्वान का विचार है कि "ये पात्र जिस परिस्थिति और वातावरण में रहते और कार्य करते हैं उसके बिना पात्रों के चित्र में परिपूर्णता नहीं आती, वे शून्य में लटके हुए-से अयथार्थ लगते हैं। अत: यह आवश्यक है कि कथानक की घटनाओं के घटित होने की सम्पूर्ण परिस्थिति उनका स्थान और समय हमारे कल्पनापट पर अंकित कर दिया जाय, जिससे कि हम पात्रों की सजीवता पर विश्वास कर सकें।"[3] उपर्युक्त कथन के आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि किसी उपन्यास में अपने समसामयिक समाज का सजीव और सशक्त चित्रण मिलता है तो वह उपन्यास अपने युग का जीवंत इतिहास प्रस्तुत करने में सक्षम माना जा सकता है। इस कथन की पुष्टि के लिए हम प्रसिद्ध आलोचक डा० भगीरथ मिश्र का मत उद्धृत कर सकते हैं - "मेरा तो

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-1

2- "Setting in a novel, or what we have called its time and place of action. In this term we include the entire milieu of a stor The manners, customs, ways of life, which enter into its composition, as well as its natural background or invironment."
__'An Introduction to the Study of Literatur William.Henry.Hudson-Page-158.

3- डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा-हिन्दी साहित्य कोश- पृ० 144

विश्वास यह है कि यदि उपन्यासकार, अपने समाज का अत्यंत यथार्थ-यहाँ तक कि ऐतिहासिक यथार्थता को ध्यान में रखकर वास्तविक जीवन का चित्रण करता है, तो वह न केवल साहित्य की सृष्टि करता है, वरन् सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास के लिए भी सामग्री तैयार करता है या पृष्ठभूमि बनाता है।"[1]

विभिन्न विद्वानों के अभिमत के अनुवीक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उपन्यासों में देशकाल और वातावरण के यथार्थ चित्रण की महत्ता को किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता। देशकाल का प्रभावोत्पादक प्रस्तुतीकरण उपन्यास को सफल बनाने के साथ-साथ दो अन्य महत्वपूर्ण कार्यों का प्रतिपादन करता है - इससे उपन्यास पाठक के लिए विश्वसनीय बनता है और आगामी काल के लिए सरस व रोचक इतिहास के रूप में अपना स्थान बना लेता है।

देशकाल और स्थानीयता :- आधुनिक उपन्यासों में किसी स्थान विशेष को उसके सम्पूर्ण वातावरण, समय तथा व्यावहारिक जीवन के साथ इतने यथातथ्य रूप में चित्रित किया जाता है कि उसमें स्थानीय रंग प्रमुख हो जाता है। इससे उपन्यास की विश्वसनीयता अधिक बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त स्थानीय विस्तृत विवरणों के द्वारा कथानक में प्रभावात्मकता और स्वाभाविकता आ जाती है। इसीलिए उपन्यासों में स्थानीय रंग देने को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। किन्तु देशकाल के साथ स्थानीय रंग का प्रयोग करते समय उपन्यासकार को स्मरण रखना चाहिए कि उसे वर्णित स्थान के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का विस्तृत परिचय प्राप्त हो। स्थानीय जीवन के विस्तृत ज्ञान के अभाव में किसी स्थान का चित्रण करने पर उपन्यास में अवास्तविकता और कृत्रिमता के दोष आने का भय बना रहता है। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्थानीय रंग का आधिक्य उपन्यास को विशेष अंचल के पाठकों तक ही सीमित कर देता है, सामान्य पाठक के लिए वह उपन्यास बोझिल हो उठता है।

देशकाल, स्थानीय रंग और विविध वर्णनों की अपेक्षाएँ :- किसी उपन्यास में देशकाल सम्बंधी विविध विवरणों को प्रस्तुत करते समय उपन्यासकार को उनके अनुपात और संतुलन का सदैव ध्यान रखना चाहिए। जहाँ इस प्रकार का वर्णन आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है,

---

1- काव्यशास्त्र-डॉ० भगीरथ मिश्र- पृ० ९४(तृतीय संस्करण-सन् 1966)

वहाँ उपन्यास की रोचकता में बाधा पड़ती है और पाठक जल्दी-जल्दी उन पृष्ठों को पलटकर कथासूत्र को पकड़ने का यत्न करने लगता है। देशकाल का वर्णन कथानक में स्वाभाविकता, और चरित्र की स्थानीय विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है अत: 'उसे इसका साधन ही होना चाहिए, स्वयं साध्य न बन जाना चाहिए।'[1] इसके साथ-साथ उपन्यासकार में सुरुचिपूर्ण कल्पना-शक्ति का होना भी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उपन्यासकार को कई बार वास्तविक स्थानों और व्यक्तियों के अतिरिक्त अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए काल्पनिक स्थानों का भी वर्णन करना पड़ता है, विभिन्न काल्पनिक स्थितियों का निर्माण करना पड़ता है। अत: क देशकाल में सच्चाई के साथ मनोरमता और रोचकता बनाए रखने के लिए मनोरम कल्पनाओं का सम्मिश्रण भी आवश्यक है। इस तथ्य की पुष्टि करते डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा ने लिखा है -'उपन्यास में देश-काल का चित्रण करने के लिए भौगोलिक, ऐतिहासिक,सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का समग्र परिचय तो आवश्यक है ही, परन्तु कला-विधान करनेवाली कल्पना-शक्ति होना इससे कम महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि इसके बिना भौगोलिक और सामाजिक अध्ययन का उचित उपयोग नहीं हो सकता और विवरणों में सरसता नहीं लायी जा सकती।'[2] किन्तु इन कल्पनाओं के उपयोग में शर्त यह है कि उन्हें सशक्त वर्णन के द्वारा वास्तविकता प्रदान कर दी जाय ताकि उनमें देश-विरुद्धता और काल-विरुद्धता के दोष न आने पायें। देश-काल के बारे में एक अंग्रेज विद्वान ने सारांश में दो बातों द्वारा उपन्यासकार की सफलता को निर्णीत करने का अपना मत व्यक्त किया है - यथातथ्यता '(accuracy) और 'वर्णन की सशक्तता'।'[3]

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि आवश्यकता के अनुकूल यथातथ्य और रोचक देशकाल के चित्रण से उपन्यास को विश्वसनीय, स्वाभाविक तथा ऐतिहासिक महत्व से परिपूर्ण बनाया जा सकता है और इसके इससे उसका कलात्मक सौन्दर्य भी द्विगुणित हो जाता है।

देशकाल सम्बंधी उपर्युक्त विवेचन को विस्तार से देने के पीछे हमारा उद्देश्य यह है

1- काव्यशास्त्र- डॉ० भगीरथ मिश्र- पृ० 94

2- हिन्दी साहित्य कोश- डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा- पृ० 144

3. "The work of the novelist has again to be judged by the accuracy and power of his descriptions".
__An Introduction to the Study of Literature
__William Henry Hudson-page-159

कि वर्मा जी के उपन्यासों में वर्णित देशकाल का इसी आधार पर, परीक्षण किया जाय। जैसा कि पहले कहा जा चुका है वर्मा जी के अधिकांश उपन्यास सामाजिक ही हैं, कुछ उपन्यासों में ऐतिहासिक और राजनीतिक परिवेश अधिक मुखर हुआ है किन्तु इनमें भी देशकाल सम्बंधी उपर्युक्त तथ्यों का प्रतिफलन थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ होना चाहिए। इस सम्बंध में यह उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि सामाजिक उपन्यासकार को सामाजिक स्तर, रुचि इत्यादि का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इसी प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकार को तत्कालीन वातावरण, वेशभूषा, भाषा एवं नाम इत्यादि का ज्ञान होना चाहिए तभी वर्णन में सत्यता एवं यथार्थता लायी जा सकती है।

देशकाल और वातावरण को प्राय: दो भागों `Social and material` में विभाजित किया जाता है।[1] ~~इसी विभाजन को आधार बनाकर हम वर्मा जी के उपन्यासों~~ इसी विभाजन को आधार बनाकर हम वर्मा जी के उपन्यासों में वर्णित देशकाल का विवेचन करेंगे।

1- <u>वस्तुवर्णन एवं प्रकृति वर्णन</u> :- वस्तु वर्णन के अन्तर्गत समस्त भौतिक-वर्णन को समाहित किया जाता है। इसमें सभी गोचर पदार्थ और वह जिसका अस्तित्व या सत्ता हो`[2] आ जाते हैं। डॉ० शुभकार कपूर ने वस्तु वर्णन में `गढ़-किले, वाटिका, बाजार, नदी, पर्वत, तीर्थ, प्रासाद, महालय, नगर, ग्राम, आस पास के भू-भाग`[3] का समावेश किया है। आचार्य शुक्ल का कथन है कि `वस्तु वर्णन कौशल से कवि लोग इतिवृत्तात्मक अंशों को भी सरस बना सकते हैं।`[4] काव्य की भाँति उपन्यास में भी रोचक वस्तु-वर्णन` कथा के घटना-स्थल का आभास देकर उपन्यास की सरसता एवं विश्वसनीयता में अभिवृद्धि कर सकता है।

वर्मा जी के उपन्यासों में नगर, ग्राम, नदी, पर्वत इत्यादि के विस्तृत वर्णन प्राय: कम ही मिलते हैं। अपने उपन्यासों में आवश्यकतानुसार उनका उल्लेख करके लेखक मुख्य समस्या

---

1. "We may therefore distinguish two kinds of setting-The social and material."

   -उपरिवत् - पृ० 158

2- देखिए- संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर-नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 886

3- आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य-डॉ० शुभकार कपूर, पृ० 355

4- जायसी ग्रंथावली- भूमिका, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 78

अथवा वर्णित वातावरण में पात्रों के मनोगत भावों के चित्रण में संलग्न हो जाता है। यहाँ हम वर्मा जी के विभिन्न उपन्यासों में किये गये 'भौतिक-चित्रण' की संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

'पतन' में नवाब वाजिदअली शाह की असंख्य बेगमों में से एक बेगम के कमरे के वर्णन से उनके वैभव का आवश्यक आभास हो जाता है -'फाड़ तथा फ़ानूस लटक रहे थे, और कमरा सुन्दर चित्रों से सुसज्जित था। फ़ारस के मुलायम तथा सुन्दर कालीन बिछे थे। -----उसके सामने एक पलंग पड़ा था, जिस पर एक मखमल का गद्दा बिछा हुआ था। उस पर दुग्ध से भी स्वच्छ एक कामदार रेशमी चादर बिछी हुई थी। ज़री के काम की तकिया रखी थी, और रेशम की एक ओढ़ने की चादर भी पड़ी थी।'[1]

इसी प्रकार वाजिदअली शाह के एक सामान्य से कर्मचारी मुहम्मद याकूब के महल में जेलखाने के कमरे का वर्णन[2] नवाब के समय की विलासिता और वैभव का चित्रण करने में पूर्णतया समर्थ है। इस उपन्यास में एक स्थान पर मुहम्मद याकूब के भवन के आसपास के भूखण्ड के चित्रण से तत्कालीन भवन-निर्माण-स्थिति का भी कुछ आभास मिल जाता है -

'उस दालान से मिला हुआ एक बाग़ था। पर वह दालान जिस स्थान पर थी, उसके आस-पास का बाग़ उजड़ा हुआ पड़ा था। ------ वह बाग़ भवन के पिछले भाग में था। बाग के तीन ओर तो आठ फ़ीट ऊँची एक चहारदीवारी थी, और चौथी ओर वह विशाल भवन था।'[3]

'चित्रलेखा' में सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के राज-प्रासाद के संक्षिप्त चित्रण से भी तत्कालीन राज-प्रासादों के वातावरण का सफल अंकन किया गया है - 'महायज्ञ के अभिमंत्रित धूम्र से सुवासित राज-प्रासाद के विशाल प्रांगण में सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के अतिथि आसीन थे। रत्न-जटित स्वर्ण के राज-सिंहासन पर महाराज विराजमान थे।'[4]

इसी परिच्छेद में श्रृंगार-गृह, सभा-मण्डल, प्रांगण आदि का उल्लेख करके उपन्यासकार ने प्राचीन कालीन राज-प्रासादों के वातावरण को उपस्थित करने का प्रयास किया है।

1- पतन- भगवतीचरण वर्मा, पृ० 63

2- ,, ,, पृ० 40

3- ,, ,, पृ० 42

4- चित्रलेखा- पृ० 34

चित्रलेखा के भवन में 'सहस्रों दीप-शिखाओं का प्रकाश'[1] और सामंत मृत्युन्जय के भवन में 'नृत्य भवन'[2] आदि के उल्लेख मात्र से उपन्यासकार तत्कालीन वातावरण की सृष्टि करने में सफल हुआ है। 'चित्रलेखा' के अठारहवें और उन्नीसवें परिच्छेद में तीर्थस्थली काशी का चित्रण भी मिलता है -

चारों ओर गंगा के वक्षस्थल पर नौकाएँ उतरा रही थीं- कहीं गाना हो रहा था, कहीं बाजे बज रहे थे।'[3]

पाटलिपुत्र की सड़कों और राजमार्ग का वर्णन तत्कालीन वैभव-विलास के मोहक वातावरण की प्रस्तुति करता है -

'पाटलिपुत्र की सड़कों पर सामन्तों के रथ उमड़ पड़े थे; फूलों के हार लिए हुए मालिन युवतियाँ सामन्तों को हार पहना रही थीं - सुवासित तथा शीतल शर्बत के पात्र धनी युवक तथा युवक युवतियों के होठों का चुम्बन कर रहे थे। चारों ओर उल्लास और विलास था।

राजमार्ग उस समय मानों उत्सव का केन्द्र हो रहा था। जौहरियों की दूकानों पर युवतियाँ रंगरेलियाँ कर रही थीं; और तँबोलियों की दूकानों पर युवक।'[4]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि 'पतन' और 'चित्रलेखा' जैसे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों में संक्षिप्त किन्तु सार्थक अनुपात में तत्कालीन वातावरण-चित्रों को प्रस्तुत करके उपन्यासकार ने उपन्यासों को स्वाभाविकता प्रदान की है। एक विद्वान ने इस सम्बंध में उचित ही लिखा है - 'चित्रलेखा में कथा-प्रवाह के सहज-क्रम में आए देशकाल के तत्व इतिहास के क्षीण आवरण-ने उसे यथार्थता दी है तथा तत्कालीन वैभव-विलास के मादक वातावरण ने रोचकता-वर्द्धन में योग।'[5]

ऐतिहासिक-परिवेश युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय जीवन से सम्बंधित उपन्यासों में भी वर्मा जी ने भौतिक-वर्णनों का उपयोग किया है। उन्होंने

1- चित्रलेखा- पृ0 55

2- ,, पृ0 70

3- ,, पृ0 141

4- ,, पृ0 61

5- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि- डॉ0 सत्यपाल चुघ, पृ0 431

अपने सभी उपन्यासों में नगरों,बाजारों और घरों का यथा-आवश्यक उल्लेख और वर्णन किया है। `टेढ़े मेढ़े रास्ते `,`सीधी सच्ची बातें और प्रश्न और मरीचिका ` उपन्यासों में क्रमश: कलकत्ता,बम्बई और दिल्ली जैसे महानगरों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

`टेढ़े मेढ़े रास्ते ` में प्रभानाथ अपने बड़े भाई उमानाथ को लेने कलकत्ता जाता है। वह कलकत्ता देखने जाता है। धरतल्ला,चितपुर रोड, बड़ा बाजार, हैरीसन रोड, बाग बाजार आदि स्थानों पर घूमते हुए वह उन स्थानों की स्थानीय विशेषताओं से पूर्णत: परिचित हो जाता है।[1] कलकत्ता की क्रोड़ में पलनेवाले करोड़पतियों और कौड़ियों के मुहताज जन-समुदाय का उसे साक्षात्कार हो जाता है।`सीधी सच्ची बातें ` में नायक जगतप्रकाश का काफी समय बम्बई में बीतता है। जुहू,परेल,महालक्ष्मी का मन्दिर, वार्डन रोड, मुहम्मदअली-रोड, कालबादेवी रोड आदि स्थानों को देखकर उसने बम्बई की आत्मा के दर्शन कर लिये थे। इस उपन्यास में बम्बई के मलाबार हिल, हैंगिंग गार्डन, मैरीन ड्राइव,फोर्ट एरिया,कोलाबा, चौपाटी,भिण्डी बाजार, कालबादेवी,भूलेश्वर,ग्राण्टरोड,दादर, माटुंगा,महीम,बान्द्रा,खार, सान्ताक्रुज आदि स्थानों का उल्लेख भी उपन्यासकार ने किया है जहाँ बम्बई की समस्त वैभव और निर्धनता एक साथ साँस लेती है।[2] `सीधी सच्ची बातें ` में बम्बई के अतिरिक्त जबलपुर, इलाहाबाद, कानपुर, अमृतसर, कलकत्ता,इत्यादि नगरों की स्थानीय विशेषताओं को दृष्टि में रखकर उनका चित्रण किया गया है।`प्रश्न और मरीचिका ` में दिल्ली का विस्तृत वर्णन किया गया है।[3]

बड़े-बड़े नगरों के अतिरिक्त वर्मा जी ने गाँवों के परिवेश को भी प्रस्तुत किया है। `सीधी सच्ची बातें ` में जगतप्रकाश के महोना ग्राम का चित्रण द्रष्टव्य है -

`सुमेर ने ठीक ही कहा था कि गाँव उजड़ता जा रहा है। उसे लग रहा था जैसे वह खण्डहरों के बीच में चल रहा हो। हर तरफ टूटे और उजड़े हुए मकान नजर आते थे जो मिट्टी के ढूह-से दिखते थे। उसके जान-पहचान वाले न जाने कितने लोग गाँव छोड़कर चले गये थे, जहाँ पहले पचासों करघे काम करते हों, वहाँ अब दस-पन्द्रह करघे ही चलते दिखलाई पड़े उसे।`[4]

1-	टेढ़े मेढ़े रास्ते-	पृ० 72 से 74 तक
2-	सीधी सच्ची बातें-	पृ० 74,89,91,174
3-	प्रश्न और मरीचिका-	पृ० 29,30,34,35
4-	सीधी सच्ची बातें-	पृ० 104

महोना के बाजार का वर्णन भी दर्शनीय है -

'बाजार गाँव के दूसरे सिरे पर लगता था । पचासों बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं, बाजार के स्थल पर । कपड़े की, बिसातखाने की, अनाज की, तरकारियों की, मिठाइयों की और अन्य आवश्यक चीजों की न जाने कितनी दूकानें लगी थीं एक पाँत में । अभी कुल आठ बजे थे, लेकिन बाजार में पूरी चहल-पहल थी । ------- दूकानों पर भीड़ लगी थी । आस-पास के छोटे-छोटे पुरवों से , गाँवों से और कस्बों से पुरुष आये थे उस बाजार में क्रय-विक्रय करने । ---- चिथड़ों में लिपटे किसान और अन्य ग्रामवासी, इस क्रय-विक्रय के क्रम में व्यस्त, चेहरों पर थकान और निराशा ।'[1]

'सीधी-सच्ची बातें' के पाँचवें परिच्छेद में महोना ग्राम का समग्र वातावरण बड़ी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया गया है । इस वर्णन की विशेषता यह है कि चौथे परिच्छेद में बम्बई जैसे विशाल नगर के बाद महोना ग्राम के वर्णन से दो विपरीत परिवेशों के चित्रण से भारत के नगर और गाँवों का तुलनात्मक परिचय प्राप्त हो जाता है ।

भगवती बाबू ने विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति के अनुसार उनके मकानों और रहने के स्थानों का भी अनुकूल चित्रण किया है । उनके प्रत्येक उपन्यास में इस प्रकार के उद्धरण देखे जा सकते हैं ।'तीन वर्ष' में गाँव से आये एक गरीब छात्र रमेश के छात्रावास के कमरे का दृश्य[2] और एक धनी ताल्लुकेदार के पुत्र अजित की कोठी[3] का एक साथ वर्णन करके उपन्यासकार ने भारतीय जीवन में व्याप्त आर्थिक असमानता का उत्तम चित्र प्रस्तुत किया है ।

इतना ही नहीं, वर्मा जी ने विभिन्न रुचियों वाले व्यक्तियों के घरों और ड्राइंगरूम की साज-सज्जा का वर्णन भी उनकी रुचि के अनुकूल किया है । कैशा कोमल एक चित्रकार थी और कला के प्रति उसका अतीव अनुराग था, उसके ड्राइंग-रूम का चित्रण वर्मा जी ने इस प्रकार किया है -'वह एक छोटा-सा क वक्व०सक०क्षेवकक्षे०क्षेवकए कमरा था और बड़ी सुरुचि के साथ सजाया थक गया था । एक छोटा -सा तख्त सामने वाली दीवार से

1- सीधीसच्ची बातें- पृ० 113

2- तीन वर्ष- पृ० 13-14

3- ,, पृ० 15-16

मिला रक्खा था, जिस पर एक लाल गोट वाला साटन का एक पीला गद्दा बिछा था । गद्दे पर कुछ मिश्रित-सी चीनी और जापानी किस्म की कढ़ाई थी । उस तख्त पर करीब एक दर्जन कढ़े हुए छोटे-छोटे लाल गोट वाले साटन के तकिये दीवार से मिले खड़े थे । दो आराम कुर्सियाँ पड़ी थीं और उन पर भी वैसी ही कढ़ी हुई गद्दियाँ थीं । चार सरकन्डे के मोढ़े, लाल-पीले कपड़ों से सिर से पैर तक मढ़े हुए रक्खे थे । दीवार पर तरह-तरह के चित्र लगे थे । बीच में मुरादाबादी कामवाली पीतल की एक मेज थी ।'[1]

वर्मा जी ने अपने उपन्यास 'सामर्थ्य और सीमा' में भौतिक-चित्रण सब सर्वाधिक विस्तार से किया है । सम्पूर्ण उपन्यास सुमना और यशनगर के आसपास के भूखण्ड के विस्तृत वर्णन से भरा है । सुमना पर्वतीय क्षेत्र के एक छोटे से गाँव के रूप में चित्रित किया गया है, इसलिए उसके आस-पास के क्षेत्र में ऊँचे पर्वतों, घाटियों, नदियों, घने जंगलों इत्यादि का जो वर्णन भगवती बाबू ने किया है, वह अत्यन्त स्वाभाविक और यथार्थ है -

'इस सुमना नाम के स्टेशन से उत्तर-पूर्व प्राय: चालीस मील की दूरी पर, जहाँ से हिमालय की पर्वत-श्रेणियाँ आरम्भ होती हैं, व एक बड़ा-सा कस्बा है, जिसका नाम यशनगर है । उत्तर प्रदेश के मैदानों से इस बस्ती का पुराना सम्पर्क रहा है । इन जंगलों के बीच से होकर न जाने कब से मनुष्य हिंस्र पशुओं का मुकाबला करता हुआ यशनगर और उसके दक्षिण-पूर्व में बसे हुए नगर ज्ञानपुर से सम्पर्क स्थापित किए हुए था । रास्ते में बड़े-बड़े नद पड़ते हैं, भूमि ऊँची-नीची है और इसलिए साल में छ: महीने ज्ञानपुर और यशनगर के बीच कोई रास्त नहीं रहता । -------- यशनगर के आस-पास पहाड़ों पर, घाटियों में, जहाँ भी मनुष्य को स्थान मिल गया वहाँ उसने अपनी बस्तियाँ बना डालीं और वहीं से उसने आगे फैलना आरम्भ कर दिया । लोगों ने खेती की, लोगों ने व्यवसाय किये और इसके साथ-साथ लोग शिकार करते रहे ।'[2]

ऐसे भूखण्ड के मध्य सुमना स्टेशन का चित्र भी अत्यंत प्रभावशाली है -'सुमना अभी हाल में एक साल पहले बना था । लाल ईंटों की बनी दो कमरों वाली स्टेशन की इमारत औ

1- अपने खिलौने- पृ० 52

2- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 2-3

इस इमारत के चारों प्राय: दस-बारह एकड़ जमीन साफ़ की गई थी । और इस जमीन के आगे-पीछे, लम्बे-लम्बे पेड़ एक-दूसरे से उलझे हुए खड़े थे, और पेड़ों की छाँह का अन्धकार उस जंगल में भरा हुआ था । ऐसा लगता था कि घने जंगलों के बीच से होकर लोहे की पटरियों की एक नदी बह रही हो और उस नदी के किनारे एक छोटे-से घाट की भाँति वह सुमना स्टेशन खड़ा हो ।'[1]

सम्पूर्ण उपन्यास का कथानक इन्हीं दो स्थानों-यशनगर और सुमना के बीच घूमता रहता है अत: पूरे उपन्यास में जगह-जगह इन स्थानों का और इनके पास प्रवहमान रोहिणी नदी का सविस्तार वर्णन भगवती बाबू ने किया है ।[2] किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन विस्तृत वर्णनों ने कहीं भी औचित्य की सीमा का उल्लंघन नहीं किया है । और उनमें रोचकता का अभाव कहीं भी दिखलाई नहीं देता ।

वर्मा जी के उपन्यासों में किसी भवन के बाह्य दृश्य का विस्तृत वर्णन केवल एक दो स्थानों पर ही मिलता है ।'सामर्थ्य और सीमा' में यशनगर के राजभवन का भगवती बाबू ने सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है -

'यशनगर मानव निर्मित एक सुन्दर उद्यान की भाँति दिख रहा था ।

\+ + +

यशनगर के बीचों-बीच केन्द्र के रूप में यशनगर का राजभवन खड़ा था । तिमंजली इमारत, पत्थरों और संगमरमर की बनी हुई, और उस इमारत पर दो मंजिलें और थीं मीनार के रूप में । यह मीनार घड़ी लगवाने के लिए बनवाई थी राजा विजय बहादुर सिंह ने, लेकिन किन्हीं कारणों से घड़ी नहीं लग सकी और इसीलिए घड़ी का रिक्त स्थान मीनार की दूसरी मंजिल पर दिख रहा था, कुछ कुरूप-सा और डरावना-सा । राजप्रासाद का मुख पूर्व की ओर था और राजभवन के सामने एक बहुत सुन्दर उद्यान था । उत्तर की ओर राजभवन का अतिति-कक्ष था, इस अतिथि-कक्ष में दस-छोटे-छोटे बँगले थे तीन-तीन कमरों के । राजभवन के दक्षिण की ओर यशनगर राज्य के सरकारी दफ्तर थे और कचहरी थी, जिन पर जमींदारी उन्मूलन के बाद उत्तर प्रदेश सरकार ने अधिकार कर लिया था । और राजभवन के पश्चिम की ओर यशनगर राज्य के नौकरों के निवास-स्थान थे तथा पशुओं एवं मोटरों के आवास थे ।'[3]

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 3-4
2- ,, पृ० 91 से 93 तक, 108-109, 128-129, 279-280
3- ,, पृ० 279-280

वर्मा जी ने इस इमारत का वर्णन अकारण ही नहीं किया है वरन् इस उपन्यास में इस राजप्रासाद का महत्व उस समय प्रतीत होता है जब कथा का चरमांश इसी राजभवन में घटित होता है । इसी राजभवन में विश्व प्रसिद्ध पाँच व्यक्तित्व राजभवन की स्वामिनी रानी मानकुमारी को प्राप्त करने के लिए संघर्षरत हो जाते हैं और कामना तथा वासना के आवर्त में फँसी राजलक्ष्मी अपनी मर्यादा का विस्मरण कर इनके षड्यंत्र में उलझ जाती है, किन्तु इस अट्टालिका का भी मानो कोई निजी व्यक्तित्व है जो अपनी स्वामिनी को पहले तो भीषण प्रलय से सुरक्षा प्रदान करता है, किन्तु अन्त में उस जीवन के मोह में फँसी मानकुमारी को प्रलय और महानाश के हाथों सौंप देता है, पतित और गर्हित जीवन से बचने के लिए । और अपने स्वामी-परिवार के समाप्त होने के साथ-साथ स्वयं विनष्ट हो जाता है। `भूले बिसरे चित्र` में रायबहादुर कामतानाथ के वैभव का आभास कराने के लिए उनकी कोठी का बाह्य चित्र प्रस्तुत किया गया है ।[1]

वर्मा जी के उपन्यासों में वस्तु-वर्णन के विभिन्न उदाहरणों के परीक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्मा जी ने यद्यपि विस्तृत वस्तु-वर्णन प्राय: कम ही किया है, कथा में वर्णित स्थानों के उल्लेख की ही प्रवृत्ति उनमें अधिकांशत: परिलक्षित होती है तथापि जब और जहाँ स्थानों और वस्तुओं का वर्णन उन्होंने किया है उसमें कहीं भी यथार्थता और सशक्तता का अभाव नहीं दिखता । अपने व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने जिन स्थानों का परि-भ्रमण किया है उनका ही उल्लेख और वर्णन उन्होंने किया है । वर्मा जी के जीवन के सम्बंध में विचार करते समय हम देख चुके हैं कि बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, इलाहाबाद, कानपुर आदि स्थानों में उनके जीवन का पर्याप्त समय व्यतीत हुआ है । इसके अतिरिक्त किसी नगर विशेष का उल्लेख करते समय वर्मा जी ने उस नगर की जगत्-प्रसिद्ध विशेषताओं और वस्तुओं का ही वर्णन किया है जिससे विश्वसनीयता बनी रहती है ।

`सामर्थ्य और सीमा` के अतिरिक्त वर्मा जी ने किसी भी उपन्यास में भूखण्डों के विशाल चित्र प्रस्तुत नहीं किये हैं । उनमें स्थानों के वर्णन की `लैंडस्केप पेन्टर` सी स्थिति नहीं मिलती वरन् वह घर, मार्ग आदि का एक ही मिनट में वर्णन (minute descriptions) करके उन स्थानों में उपस्थित चरित्रों और व्यक्तियों में स्पंदित जीवन को अधिक महत्व प्रदान कर देते हैं । तथापि वर्मा जी अपने उपन्यासों में स्थान का समग्र चित्र एक ही बार में

1- भूले बिसरे चित्र- पृष्ठ-564

प्रस्तुत नहीं करते हैं। वह उपयुक्त स्थलों पर उनकी स्थानीय विशेषताओं का उल्लेख करके यह कार्य पाठक की कल्पना पर ही छोड़ देते हैं कि वह स्थानीय विशेषताओं के आधार पर उपन्यास में वर्णित स्थान का चित्र स्वयं ही बना ले।

वस्तु-वर्णन के अन्तर्गत सम्पूर्ण दृश्य-जगत को समाहित किया जाता है यह हम देख चुके हैं। प्रकृति-वर्णन में जगत्-नियंता द्वारा निर्मित विभिन्न उपादानों को समाविष्ट किया जाता है। वह वस्तुवर्णन का ही एक अंश है जिसमें मानव की बुद्धि,और शरीर का कोई हाथ नहीं है। यह उस सारे दृश्य -जगत् की वाचक है जिसमें पशु-पक्षी,वनस्पतियों आदि अपने मौलिक या स्वाभाविक रूप में दिखाई देती हैं।[1] ~~इस प्रकार हम देखते हैं कि~~ 'सोफिस्टों (Sophists) ने प्रकृति को विश्वसर्जन के रूप में ग्रहण किया है।'[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति में विश्व-नियंता द्वारा निर्मित सम्पूर्ण दृश्य-जगत् अपने मौलिक और स्वाभाविक रूप में आ जाता है। इसके साथ-साथ उसमें विश्व के शाश्वत नियम और व्यवस्था का भी समावेश हो जाता है।

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रकृति मानव-क्रियाकलापों की पृष्ठभूमि के रूप में ही अधिकांशत: चित्रित की गई है तथापि प्रकृति-चित्रण की विभिन्न शैलियों का उपयोग उनके उपन्यासों में मिल जाता है।

'पतन' में पात्रों की मन:स्थिति के अनुकूल ही प्राकृतिक सौन्दर्य और भीषणता का चित्रण किया गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

'हवा तेज थी और बादल घिर आये थे उसी समय एक मनुष्य गंगा के किनारे,उस स्थान पर जहाँ आज कानपुर का मैसकर घाट है, टहल रहा था। कालिमा इतनी गहरी छाई हुई थी कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। समय का अन्दाजा लगाना उस समय कठिन था, पर तो भी इतना निश्चित है कि उस समय प्राय: दोपहर व्यतीत हो चुकी थी।'[3]

वर्षा के ऐसे भीषण रूप के समान ही रणवीर की मन:स्थिति भी थी,वह एक व्यक्ति की हत्या करके और अपने प्रणय में निराशा प्राप्त करके भयंकर मानसिक द्वन्द्व का अनुभव कर रहा था।

1- शब्दार्थक ज्ञानकोश- रामचन्द्र वर्मा- पृ0 212

2- हिन्दी साहित्य कोश-पृष्ठ-464

3- पतन- पृ0 7

इसी प्रकार कथानक में अवसर की अनुकूलता के समय प्रकृति की सुन्दरता द्वारा लेखक ने आगामी घटना का संकेत किया है -

'वसंत-ऋतु समाप्त हो गयी थी, पर बाग की शोभा अभी वैसी ही बनी थी। बेला और जुही की खुशबू उठकर दिमाग को मस्त कर रही थी।'[1] प्रकृति के ऐसे मोदक रूप से मन का विषाद मिट जाने पर रणवीर को अपनी बिछुड़ी हुई प्रेमिका सुभद्रा अनायास ही मिल जाती है।

प्रकृति को उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा पूर्व काल से चली आ रही है और आज भी उसका प्रयोग सर्वाधिक इसी रूप में होता है। संयोगावस्था में प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मनोहारी एवं पारस्परिक रतिभाव को उद्दीप्त करने वाली प्रतीत होती है। यशोधरा को भी अपनी इच्छानुकूल सुदर्शन बीजगुप्त का सान्निध्य प्राप्त करके प्रकृति की छटा अनुपम प्रतीत होती है - 'पूर्व दिशा में प्रकाश की प्रथम रश्मि अपना स्वर्णांचल फैलाये हुए प्रात:कालीन पवन से अठखेलियाँ कर रही थी और तारे पीले पड़कर एक के बाद एक अपना अस्तित्व मिटाते चले जा रहे थे। उसने देखा कि उससे थोड़ी दूर पर यशोधरा खड़ी बेले की अधखिली कली पर से हिमजल के साथ खेल रही है।'[2] और यशोधरा कह उठती है - 'आर्य बीजगुप्त देखो - प्रकृति के इस सुन्दर रूप को तो देखो। यहाँ कितना उल्लास है, कितनी शान्ति है, और कितना सौन्दर्य है। सारे जगत् की चिन्ता, उसकी तृष्णा और अभिशाप से भरी हलचल से दूर, अति दूर यहाँ पर निष्कलंक जीवन की तितलियों के रंगीन परों के साथ अठखेलियाँ कर रहा है।'[3]

इससे ठीक विपरीत बीजगुप्त को चित्रलेखा के अभाव में समस्त प्रकृति भयोत्पादक, कष्टकर, कुरुप और निराशाजनक प्रतीत होती है - 'जाड़े के दिनों में प्रकृति के इन सुन्दर स्थानों की कुरूपता देखो, जहाँ कुहरा छाया रहता है, जब इतनी शीतल वायु चलती है कि शरीर काँपने लगता है। गरमी के दिनों में दोपहर के समय इतनी कड़ी लू चलती है कि शरीर झुलस जाता है।'[4] इतना ही नहीं, चित्रलेखा के वियोग में बीजगुप्त का मन इतना अशान्त है कि वह प्रकृति की तमाम असुविधाओं का उल्लेख करके यशोधरा को आश्चर्य चकित कर देता है।[5] उद्दीपन के रूप में प्रकृति का उपयोग 'रेखा' में सर्वाधिक हुआ है।[6]

1- पतन- पृ0 61
2- चित्रलेखा- पृ0 117
3- ,, पृ0 ,,
4- ,, पृ0 118
5- ,, पृ0 118 से 120 तक
6- ,, द्रष्टव्य पृ0 47,50,66-67,163-164,169

वर्मा जी के उपन्यासों में घटनाओं और स्थितियों के अनुकूल प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण प्राय: सभी उपन्यासों में मिलता है ।[1] इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण 'भूले-बिसरे चित्र' में मिलता है । शीतऋतु की रात्रि में बादलों का कड़कना, बरफीली हवा का चलना और बूँदाबूँदी होना प्रभुदयाल की हत्या के भयानक वातावरण को और अधिक भयंकर बना देता है और उस डरावने वातावरण का सम्पूर्ण चित्र पाठक की दृष्टि के समक्ष प्रस्तुत कर देता है ।

'बादल अब जोर से कड़कने लगे थे और ~~बूंदाबू~~ बूँदाबादी शुरू हो गई थी । तहसील के घण्टे ने टन-टन करके नौ बजाये । उत्तरी हवा समस्त वेग बटोरकर चल रही थी और घाटमपुर का कस्बा कुछ अजीब ढंग से वीरान लग रहा था ।'[2] और कुछ समय पश्चात् -

'उस समय बादल छँट गये थे और चाँद निकल आया था । सरदी अब बहुत अधिक बढ़ गई थी । हाथ-पैर ठिठुर रहे थे । जब ये लोग शिवपुरा पहुँचे, लाला प्रभुदयाल की हवेली में मौत का सन्नाटा -सा छाया हुआ था ।'[3]

1- चित्रलेखा- चित्रलेखा के वियोग की स्थिति से उत्पन्न निराशा के कारण सुहावनी प्रकृति भी बीजगुप्त को पीड़ित करती है-पृ० 115 ; टेढ़े मेढ़े रास्ते - मनमोहन (प्रभाकर) अवकाश और निश्चिन्तता के क्षणों में प्रकृति की सुन्दरता का आस्वाद करता है ।- पृ०-309 ; आखिरी दाँव - रामेश्वर और चमेली की घनिष्ठता बढ़ाने के लिए वर्षा का चित्रण, वर्षा के कारण ही दोनों प्रथम परिचय के दिन एक ही कमरे में सोते हैं ।- पृ०- 28-29 ; वह फिर नहीं आई - सुन्दर प्राकृतिक वातावरण के मध्य ज्ञानचन्द की प्रसन्नता में वृद्धि करने वाली घटनाओं का उल्लेख -पृ० 105 ; सीधी सच्ची बातें- कुलसुम अपनी आंतरिक उथल-पुथल के अनुरूप समुद्र में भी दु:ख और दर्द का अनुभव करती है । जसवंत कपूर की सगाई के उपरांत कुलसुम में निराशा व्याप्त हो गयी थी ।-पृ० 183 ; रेखा - योगेन्द्रनाथ से सम्पर्क बढ़ने और इस कारण प्रोफेसर प्रभाशंकर के कोप का भाजन बनने के भय से रेखा के मन में जो उलझन हो रही थी और स्थितियों को सुचारु रूप से संचलित न कर पाने के कारण जो धुंधलापन उसके मन में भर गया था- उसी की अभिव्यक्ति प्राकृतिक वातावरण के माध्यम से की गई है - पृ० 298; भूले बिसरे चित्र - गंगाप्रसाद की मानसिक स्थिति के अनुकूल प्रकृति का वर्णन- पृ० 328.

2- भूले बिसरे चित्र- पृ० 64

3- भूले बिसरे चित्र- पृ० 66

अवसर के अनुकूल प्रकृति-चित्रण के विभिन्न उदाहरणों के प्रस्तुत करने के पश्चात् हम देखेंगे कि वर्मा जी ने कुछ स्थलों पर यह संकेत भी किया है कि मानवीय-क्रिया-कलापों से निर्लिप्त प्रकृति का क्रम अपने स्वाभाविक रूप में चलता ही रहता है । वह मानव जगत् का संचालन करती है, स्वयं उससे संचालित नहीं होती । वीणा अपने प्रियतम प्रभानाथ को दी जानेवाली प्रताड़ना के सम्बंध में भयानक स्वप्न देखती है और चिल्लाकर आँख खोलने पर उसे दिखता है - `उषा की प्रथम किरणें प्रवेश कर रही थीं ।`[1] उपन्यासकार ने बड़ी कलात्मकता से संकेत कर दिया है कि उषा की किरणें उसमें नवीन प्रकाश भर देती हैं, उसे दिशा का निर्देश करती हैं और वीणा अपने कर्तव्य के लिए अग्रसर हो जाती है ।

वर्मा जी ने Howthrone, Nathanicl की भाँति[2] `चित्रलेखा` उपन्यास में चित्रलेखा की शारीरिक वेदना, जलन तथा अन्तर्द्वन्द्व के विपरीत मनोरम प्रात:काल के सौन्दर्य को चित्रित किया है -

`उस समय सूर्योदय हो रहा था । कलरव के स्वर उस प्रात:कालीन समीर में गूँज रहे थे, जिसकी चाल नव-विकसित कलिकाओं के सौरभ-भार से मन्द पड़ गयी थी ।`[3]

प्राकृतिक-दृश्यों के द्वारा पात्रों की चारित्रिक विशेषता को इंगित करने का प्रयोग भी वर्मा जी ने किया है । `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में कर्मकाण्डी और तपस्वी ब्राह्मण रामसमुझ पाण्डे की चारित्रिक विशेषता का उद्घाटन करने के लिए वर्मा जी ने बड़ी कलात्मकता से काशी की एक सुबह के चित्र की अवतारणा की है -

`उस समय सूर्योदय हो रहा था और अगहन मास के बढ़ते हुए जाड़े में भी काफी संख्या में भक्त लोग गंगास्नान कर रहे थे ।`[4]

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ0 477

2- देखिए - An Introduction to the Study of Liturature-William Henry Hudson__"Howthrone makes effective use of contrast when he shows the 'fresh, transparent, cloudless morning' Peeping through the windows of the silent chamber in which judge Pychoen sits dead".- Page-162.

3- चित्रलेखा- पृ0 130

4- सबहिं नचावत राम गोसाईं -पृ0 103

इस जाड़े में कपड़े उतारकर सूर्योदय के समय गंगा में डुबकी लगाने के प्रश्न पर राजा पृथ्वीपाल सिंह और एक अन्य ब्राह्मण कमलनयन त्रिपाठी को संकोच हो रहा था, वहीं रामसमुझ पाण्डे एक घड़ी से अधिक समय से गंगा के शीतल जल में खड़े दुर्गा सप्तसती का अन्तिम अध्याय पढ़ रहे थे। इस प्रकार इस दृश्य द्वारा वर्मा जी ने रामसमुझ पाण्डे की 'धरम करम' की नियमबद्धता और दृढ़ता का संकेत किया है।

कुछ स्थलों पर प्राकृतिक उपादानों के रूपक द्वारा भावों का निरूपण भी भगवती बाबू ने किया है - 'वह मलय समीरण से अठखेलियाँ करने आयी थी, ज्वालामुखी में जलने न आयी थी।'[1] प्रकृति के इस रूपक द्वारा आत्मिक प्रेम और उद्दाम वासना का भाव व्यक्त किया गया है।

अभी तक हमने वर्मा जी के उपन्यासों में प्रकृति के विभिन्न प्रयोगों की चर्चा की है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि वर्मा जी ने आलम्बन के रूप में प्रकृति चित्रण कहीं भी नहीं किया है। प्रकृति के विभिन्न मोड़ों यथा-दिन रात और ऋतुओं का संश्लिष्ट चित्रण उनके उपन्यासों में प्राय: नहीं के बराबर है। अधिकांशत: उनका उल्लेख या संकेत कर देने की प्रवृत्ति वर्मा जी के उपन्यासों में मिलती है। जैसे -'जून का पहला सप्ताह बीत रहा था और गरमी अब अपनी चरम सीमा पर पहुँच रही थी' (सीधी सच्ची बातें -पृ० 111), 'सरदी तेज पड़ने लगी थी' (भूले बिसरे चित्र -पृ० 482), 'बरसात अब खत्म हो गई थी और वातावरण में बरसात के अन्त वाली भयानक उमस भर गई थी' (भूले बिसरे चित्र -पृष्ठ-549) इत्यादि। तथापि एकाध स्थलों पर ऋतुओं के चित्र बड़ी सजीवता के साथ वर्णित किये गये हैं। वर्षा का एक चित्र द्रष्टव्य है -

'बृहस्पतिवार के दिन मध्यरात्रि के समय जो वर्षा आरम्भ हुई, प्राकृतिक ढंग से उसे सुख-सुविधा और सम्पन्नता से युक्त वरदान होना चाहिए था। रात-भर वर्षा होती रही, साधारण वर्षा नहीं, जैसी बरसात की पहली वर्षा होती है, जब मिट्टी गमकने लगती है, जब प्यासी धरती अमृत-बिन्दु के समान पड़ती हुई पानी की बूँदों को पीकर अपने अन्दर वाले सौरभ को वायु में बिखेरकर अपनी तृप्ति और अपने उल्लास का प्रदर्शन करती है, जब पशु, पक्षी, मनुष्य सभी पुलककर गा उठते हैं और उत्सव मनाने निकल पड़ते हैं। वह वर्षा कुछ अजीब तरह का उग्र और हिंस्र रूप धारण करके आई थी जिससे सभी सहम गये थे।'[2]

1- चित्रलेखा- पृ० 128

2- सामर्थ्य और सीमा- पृष्ठ-271-272

इतना ही नहीं इस असामान्य वर्षा का बड़ा व्यापक वर्णन आगे भी दो पृष्ठों में चलता है जिसने आस-पास के समस्त वातावरण को अस्त-व्यस्त और संत्रस्त कर दियाथा ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि वर्मा जी को प्रकृति से उस सीमा तक अनुराग नहीं है जो किसी साहित्यकार को उसके गुण पर मुग्ध होकर नैसर्गिक छटा के चित्रण में तल्लीन बना देता है और अपनी वस्तु के मार्ग से विस्मृत कर प्रकृति चित्रण को ही साध्य मान लेने का भ्रम उत्पन्न कर देता है । वर्मा जी ने साधन के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है । वह घटनाओं और पात्रों की स्थिति के विश्लेषण के लिए प्रकृति का अवलम्ब ग्रहण करते हैं तथा प्रकृति के गुण और मानवीय क्रिया-कलापों में एक समन्वय स्थापित करके सम्पूर्ण वातावरण को सजीवता व सरसता प्रदान करते हैं ।

'चित्रलेखा', 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'रेखा' में प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा उनके अन्य उपन्यासों की अपेक्षा अधिक हुई है । इसके पीछे भी लेखक का एक विशेष उद्देश्य है । वह, यह कि चित्रलेखा और रेखा में प्रेम की समस्या के कारण उद्दीपन के रूप में प्रकृति का उपयोग किया गया है और 'सामर्थ्य और सीमा' में तो प्रकृति के माध्यम से मनुष्य कीसामर्थ्य और सीमा का निर्धारण किया गया है । इन तीन उपन्यासों के अतिरिक्त वर्मा जी ने आवश्यकतानुसार प्राकृतिक दृश्यों का या तो चित्रण किया है अथवाउल्लेख या फिर संकेत मात्र ही कर दिया है । वे कहीं भी प्रकृति के मोह में इतना नहीं फँसे हैं कि इनके विस्तार के कारण कथा की गति अवरुद्ध हो जाती ।

<u>वर्मा जी के उपन्यासों में चित्रित भारतीय समाज :-</u> वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में भारतीय समाज और जीवन का विस्तृत चित्रण किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि 'पतन' लिखने के समय से ही कथा के माध्यम से भारत का एक रोचक इतिहास लिखने की योजना उन्होंने बना ली थी । उनके विभिन्न उपन्यासों में सन् 1851 से सन् 1963 तक के भारत का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश बहुत कुछ जीवंत हो उठा है । यहाँ हम उपर्युक्त सभी परिस्थितियों का विवेचन क्रमशः प्रस्तुत करेंगे ।

<u>राजनीतिक स्थिति :-</u> <u>देशी राज्यों का पतन और ब्रिटिश सरकार का उत्थान</u> - 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जहाँ एक ओर भारत के कुछ स्वाभिमानी राजाओं में विप्लव की अग्नि धधक रही थी, वहीं कुछ भारतीय राजाओं और नवाबों की पारस्परिक कलह और चारित्रिक पतन के कारण देशी राज्यों की नींवें पूर्णरूपेण खोखली हो गई थी, परिणामस्वरूप व्यापारी के रूप में आये अंग्रेज भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करके शासक के रूप में

स्थापित हो गये थे। विभिन्न नियम और बहाने बनाकर अंग्रेज देशी रियासतों को हड़पने को लगे थे और भारतीय राजाओं की खूबी यह थी कि वह विलासान्धता में इस सत्य पर दृष्टिपात करने का कष्ट भी नहीं उठाना चाहते थे। इस बथे तथ्य की ओर वर्मा जी ने 'पतन' में दृष्टिपात किया है ,-' इधर लार्ड डलहौजी की नीति का पदार्पण हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य बढ़ने लगा। गोद लेने की प्रथा का, अंग्रेजी न्याय के अनुसार अंत कर दिया गया। इस प्रकार देशी राज्यएक के बाद एक अंग्रेजों के हाथ में आने लगे। पर अवध का उत्तराधिकारी मौजूद था, और अवध का राज्य अन्य देशी राज्यों की अपेक्षा बड़ा तथा धनी था। अंग्रेज अवध को हड़पना चाहते थे, पर नियमानुसार वे अवध को छीन न सकते थे। अंत में उन्हें एक बहाना मिल गया। अवध का कुप्रबंध ही उनके लिए अवध पर अधिकार जमाने के लिए यथेष्ट था।'[1]

इसके पश्चात् किस नाटकीयता से ब्रिटिश सेना अवध में घुस आई तथा उसने नबाब वाजिदअलीशाह को गिरफ्तार कर लिया- इसे बड़ी मार्मिकता से वर्मा जी ने चित्रित किया है। जब कुछ ताल्लुकेदारों ने नवाब साहब को अपनी तलवारों के सहारे छुड़ाने की अपनी इच्छा उनके सामने रखी तो उनका उत्तर था -' जाने दो- खुदा की ऐसी ही मर्जी है। मेरे लिए बुगुनाहों का खून बहाने से कोई फ़ायदा न होगा।'[2]

नवाब के इस कथन से उनकी निष्क्रियता और पुरुषत्व विहीनता का पूरा उद्घाटन हो जाता है। ऐसी बात नहीं थी कि नवाब को अपनी कमजोरी का ज्ञान ही नहीं था, वह भलीभाँति उसे जानते थे किन्तु यही देश का दुर्भाग्य था कि प्रारम्भ से ही देशी शासकों को कंचन, कामिनी कादम और विविध विलासों का ऐसा नशा चढ़ जाता है कि वे इसी को अपनी नियति मान लेते थे और फिर इनके जाल से निकल पाना उनके लिए असंभव हो जाता है। इसका भी वर्मा जी ने नवाब साहब के माध्यम से विस्तृत व विवेचन किया है।[3]

देश में कुछ ऐसे शासक भी थे जो विदेशी सत्ता का डटकर मुकाबला कर रहे थे और विदेशियों की सारी साज़िशों को असफल बना देना चाहते थे, उनके प्रयत्नों से 1857 का गदर भी हुआ किन्तु उसका परिणाम भी नकारात्मक आया। इसका कारण वर्मा जी के शब्दों में ही द्रष्टव्य है -

'राष्ट्रीयता का भाव भारतवर्ष के लिए एक नई वस्तु है, भारतवर्ष में धर्म का भाव

1- पतन- पृ० 181
2- ,, ,, 183
3- ,, ,, 33 से 35 तक

ही प्रधान रहा है, और नमक हरामी करना भारतीयों की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप है। लाखों कष्ट सहकर भी एक भारतीय अपने स्वामी की सहायता करेगा, यह भारतवर्ष की एक विशेषता है। इसीलिए इतने बड़े देश को गुलामी के बंधनों में बँधना पड़ा है, और इसी वजह से भारतीयों ने ही भारतीयों के विरुद्ध अंग्रेजों को सहायता दी।'[1]

राष्ट्रीय चेतना और कांग्रेस की स्थापना

देशी रियासतों पर ब्रिटिश अधिकार बढ़ता गया और ब्रिटिश सत्ता शक्तिशाली बनती गयी, किन्तु जाग्रत भारतीय जनगण उसकी नींव हिलाने की असफल चेष्टा करता रहा। भारतीय जनता और ब्रिटिश सरकार के निजी स्वार्थों के संघर्ष के फलस्वरूप देश में राष्ट्रीयता की भावना का स्वर अधिक मुखरित होता गया और सन् 1885 में मि० ह्यूम के प्रयत्नों से भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई। प्रारम्भ में कांग्रेस ने राजशासन पर नैतिकरूप से दबाव डालने के लिए 'लोकमत-निर्माण का कार्य किया और अनेक सुधारों की माँग की। फलस्वरूप 1892 में कुछ सुधार हुए भी, किन्तु कांग्रेस के प्रस्ताव अधिक लाभकारी सिद्ध नहीं हो सके। इस प्रकार कांग्रेस में उग्रदल का आविर्भाव हुआ और यहीं से देश की राजनीति में स्पष्ट युगान्तर दिखाई दिया। 'बंग-भंग' (1905) के कारण देश में नवीन जाग्रति एवं स्वाभिमान की लहर आ गई।[2] भूले बिसरे चित्र' की कथा का काल फलक यद्यपि सन् 1880 से 1930 ई० तक का है किन्तु इसमें राजनीति की पहली घटना 1911 ई० में आयोजित 'दिल्ली दरबार' की है। प्रारम्भ के दो खण्ड भारत के सामाजिक परिवेश को चित्रित करते हैं।

<u>दिल्ली दरबार</u> :- भारत में विदेशी शासक के दिल्ली दरबार से भारतीय जनता को इस कटु सत्य का पूर्ण अहसास हो जाता है कि वह पूर्णरूपेण गुलाम हो गई है और इसी के बाद से भारत में राजनीतिक गतिविधियाँ तीव्रता से प्रारम्भ हो जाती है।

वर्मा जी ने 'भूले बिसरे चित्र' में 'दिल्ली दरबार' की प्रारंभिक व्यवस्था का विस्तार से वर्णन किया है।[3] तथा उस समय भारत में रहनेवाला प्रत्येक अंग्रेज स्वयं को शासक

1- पतन- पृ० 183

2- हिन्दी कविता में युगान्तर- डॉ० सुधीन्द्र, पृ० 12-13

3- भूले बिसरे चित्र- पृ० 264

और प्रत्येक भारतवासी को अपना गुलाम समझता था इसका सम्यक् चित्रण किया है - बाबू गंगाप्रसाद हिन्दुस्तान पर राज्य जार्ज पंचम का नहीं है, यहाँ राज्य अंग्रेजों का है। अब आपने देखा, उस पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर से लेकर उस सिपाही को गाली देता हुआ टामी, ये सब अपने को यहाँ का राजा समझते हैं, और उन मजदूरों सेलेकर निज़ाम हैदराबाद तक जितने हिन्दुस्तानी हैं, वे सब गुलाम हैं।"[1]

इसके अतिरिक्त दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने के लिए आये राजा महाराजाओं, पूँजीपतियों और सरकारी अफसरों के रागरंग, पूँजीपतियों द्वारा 'राजा बहादुर', रायबहादुर 'सर' इत्यादि की ऊँची पदवियाँ पाने के लिए चापलूसी और पेशकश का विस्तृत वर्णन इस संदर्भ में किया गया है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि 'दिल्ली दरबार' में सम्राट द्वारा की गई 'बंग भंग का प्रतिषेध' जैसी महत्वपूर्ण राजकीय घोषणाओं का उल्लेख तक नहीं किया गया है, केवल अभिजात वर्ग की विलास लीला के चित्रण में ही कथाकार उलझकर रह गया है। संभवत: राजनीतिक घटनाओं की पृष्ठभूमि में भारतीय समाज के स्पंदन को प्रतिध्वनित करने के अपने उद्देश्य के कारण ही वर्मा जी ने इन घटनाओं को विशेष महत्व प्रदान नहीं किया है।

क्रान्तिकारी :- कलकत्ता में राष्ट्रीय चेतना एवं उग्रवादियों की हिंसात्मक कार्यवाहियों का भगवतीबाबू ने व्यंग्यपूर्ण संकेत किया है -" और मरभुखे बंगाली, कि जिस पर चाहा बम फेंक दिया। तो बादशाह सलामत की जान फालतू है कि कलकत्ता में दरबार कराया जाए उनका ?"[2]

सम्प्रदायवाद : फूट के बीज - अंग्रेजों की सुन्दर शासन-व्यवस्था का पर्दा जैसे-जैसे जनता की आँखों के आगे से हटता जाता था और लोकमान्य गंगाधर तिलक जैसे नेताओं के स्वराज्य के नारों से भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना का जागरण आ रहा था, वैसे-वैसे देश में स्वतंत्रता आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। अंग्रेज शासकों ने देखा कि सुधार-योजनाओं से जनता को भुलावे में नहीं डाला जा सकता तो उन्होंने 'फूट डालो और राज्य करो' (Devide et empera) की कूटनीति को अपना अस्त्र बनाने का निश्चय कर लिया। अंग्रेज मुसलमानों की पीठ ठोंककर किस प्रकार साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने लगे- इसका यथार्थ चित्र 'भूले बिसरे चित्र' में अल्लामा बहशी और स्वामी जटिलानंद वाले प्रकरण से प्रस्तुत किया गया है।

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 266

2- ,, पृ० 261

डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस मीर जाफर अली को उकसाकर अंग्रेज कलेक्टर ने आर्य समाज के उपदेशक के आगमन को किस प्रकार साम्प्रदायिक रंग दिलवा दिया- इस प्रसंग द्वारा वर्मा जी ने देश में साम्प्रदायिकता के प्रारम्भ का अत्यंत वास्तविक चित्र खींचा है ।

वर्मा जी ने दिखाया है कि साम्प्रदायिकता की इस शुरुआत के पश्चात् यह रोग बढ़ता ही जाता है । मुसलमान जबर्दस्ती हिन्दुओं को मुसलमान बनाने लगते हैं । साम्प्रदायिकता की इसी भावना से प्रेरित होकर मीर जाफर अली रुक्मा को मुसलमान बनवाने के लिए अल्लामा बहशी जैसे क्रूर व्यक्ति के हाथ में सौंप देता है ।[1]

खिलाफत आन्दोलन :- राजकारण में धार्मिक सम्प्रदायों को पृथक्-पृथक् महत्ता देने से विभाजक प्रवृत्तियों का प्रसार होता जाता था, तभी अंग्रेजों की इस पृथकता-वादी नीति में एक व्यवधान उपस्थित हो जाता है । मुसलमानों के 'खलीफा' तुर्की के सुलतान के अंग्रेजों के विरोधी हो जाने के कारण भारतीय मुसलमानों में भी अंग्रेजों के विरोधी हो जाने के कारण भारतीय मुसलमानों में भी अंग्रेजों के प्रति असंतोष और क्षोभ की भावना व्याप्त हो गयी । इसके फलस्वरूप मुस्लिम लीग भी कांग्रेस के साथ हो गई । मुसलमानों के इस विरोध को 'खिलाफत आन्दोलन' का नाम दिया गया । वर्मा जी ने खिलाफत आन्दोलन की भी चर्चा 'भूले-बिसरे चित्र' में की है और इस वास्तविकता की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है कि 'खिलाफत आन्दोलन' के रूप में मुसलमान भले ही अंग्रेजों का विरोध करने लगे हों और कांग्रेस में सम्मिलित हो गये हैं- किन्तु अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता की जो आग भारतीय मुसलमानों में लगा दी थी वह ऊपर से भले ही दब गई थी, किन्तु वह अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी और अवसर पाते ही भड़क उठती थी । गंगाप्रसाद एक 'नाकाबिल, बदज़बान, बदमिज़ाज और इसके ऊपर बेतहाशा रिश्वतखोर' मुसलमान समीउल्ला, जो कचहरी में एवज़ी पर काम कर रहा था और जिसके खिलाफ शिकायतों की भरमार थी, को नौकरी से हटाकर अपने एक रिश्तेदार बंसीधर को उसकी जगह पर रख देता है तो मुसलमान उसे तुरंत हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न बना देते हैं और इसका रूप धीरे-धीरे बिगड़ता ही जाता है । फरहतुल्ला बंशीधर द्वारा जालसाजी करने की शिकायत करते हैं और नाज़िर कयूमखाँ बंसीधर को इस मामले में पकड़कर गिरफ्तार करवा देता है । इस सम्बंध में गंगाप्रसाद का कथन द्रष्टव्य है -'विश्वास-मार्ग वाले इस फरहतुल्ला की हरामज़दगी देखी आपने चाचा !

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 327

खिलाफ़त आन्दोलन पर कांग्रेस में सार्वजनिक और देश-व्यापी आन्दोलन का प्रस्ताव पास करने वाले लोगों को ज़रा यह तो देख लेना चाहिए कि यह हिन्दू-मुसलमान के भेदभाव की खाई कितनी गहरी है। इस भेद-भाव की खाई को नहीं पाटा जा सकता। बंसीधर को महज़ इसलिए गिरफ़्तार करवाया गया कि वह हिन्दू है और उसके कारण एक मुसलमान को, यानी समीउल्ला को, हटना पड़ा। लेकिन चाचा, तुम यह तो जानते ही हो कि मैंने जब बंसीधर को यहाँ रखवाया था, उस समय मैंने हिन्दू-मुसलमान की नज़र से नहीं सोचा था। कलक्टर समीउल्ला से असन्तुष्ट था, क्योंकि समीउल्ला अयोग्य ही नहीं पक्का बदमाश था। और बंसीधर पढ़ा-लिखा था, इसलिए वह रख लिया गया। लेकिन मुसलमानों में इस सीधी-सी बात को हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न बना दिया गया।"[1]

इतना ही नहीं इस उपन्यास में हिन्दू-मुसलमान की समस्या की चरम सीमा वहाँ दिखती है, जब गंगाप्रसाद की दोस्ती का दम भरनेवाला और गंगाप्रसाद को अपना छोटा भाई माननेवाला अलीरज़ा भी मलका उर्फ माया शर्मा के मसले को लेकर गंगाप्रसाद की जान का दुश्मन बन जाता है।[2]

और यह साम्प्रदायिकता की समस्या आज तक भी ~~सुलझ~~ सुलझ नहीं सकी है। वर्मा जी के लगभग सभी परवर्ती उपन्यासों में यह समस्या किसी न किसी रूप में चित्रित की गई है।[3] यह समस्या शायद ही कभी हल हो सके। इस सम्बंध में फरहतुल्ला अपने विचार इस प्रकार रखते हैं - "यह मसला आज का नहीं है, सदियों से यह मौजूद है, और यह मसला इतनी आसानी से हल भी नहीं हो सकता।

\+ \+ \+

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 449

2- ,, पृ० 544

3- देखिए - 'सामर्थ्य और सीमा' - पृ० 104,105,112,122,174,175,284-285। 'सीधी सच्ची बातें' -पृ० 171,176 से 180,306,317,19,666,670 से 674; वह फिर नहीं आई - पृ० 58 से 60, 'प्रश्न और मरीचिका' -पृ० 14-15, प्रस्तुत उपन्यास में सुरैया, आयशा बेगम, उदयराज, शेख मुस्तफा कामिल, केसरबाई और मुहम्मद शफी के माध्यम से साम्प्रदायिकता की समस्या को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

इसकी वजह यह है कि मुसलमान ने उस समाज को मंजूर नहीं किया जो हिन्दू का है । हम दोनों का समाज अलग है, हम लोगों का कल्चर अलग-अलग है । हिन्दू-समाज एक्सप्लाइटेशन (शोषण) की नींव पर कायम है । यह बरहमन, क्षत्री, वैश, शूद्र कितना ऊँच-नीच है । एक मौज करे, दूसरा पिसे । जब कि मुसलमानों के समाज की नींव यूनीवर्सल ब्रदरहुड (सार्वभौमिक भ्रातृत्व) पर कायम है । अब आप ही बतलाइए कि हम दोनों किस तरह आपस में मिल सकते हैं ।'[1] 'सीधी सच्ची बातें' में जमील अहमद भी इन्हीं विचारों की पुष्टि कुछ दूसरे शब्दों में करता है ।

'इस हिन्दुस्तान में तो अब सरमाएदारी का शिकंजा बुरी तरह कस जाएगा, यह सेठ, मिलमालिक, बनिए, बरहमन-इन्हीं का बोलबाला रहेगा यहाँ ; यहाँ कम्युनिज्म के कायम होने के चासेज़ करीब-करीब खत्म हो चुके हैं । इस्लाम कम्युनिज्म के ज्यादा नजदीक है ।'[2]

अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता का जो बीज बोया था, वह मुसलमानों के इस भय से और अधिक पल्लवित हुआ कि स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दू अपनी सदियों की गुलामी का बदला मुसलमानों से लेंगे । जमील अहमद कहता है, 'यह क्यों भूल जाते हो कि मुसलमानों ने करीब आठ सौ साल हिन्दुओं पर हुकूमत की है, उन्होंने हिन्दुओं से गुलामी करवाई है । उनकी करनी ही अब उनमें यह खौफ पैदा कर रही है । इस खौफ की कोई ठोस बुनियाद है या नहीं, इस पर कुछ कहा नहीं जा सकता, लेकिन यह खौफ एक हकीकत है और रहेगा ।'[3]

महात्मा गाँधी ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने का जितना प्रयत्न किया, दोनों की एकता के जितने नारे दिये, उतनी ही यह समस्या उलझती गयी । मुसलमानों को इसमें भी षडयंत्र नज़र आता था, उधर राष्ट्रीय आन्दोलनों और देश की एकता के विभिन्न कार्यों से गाँधी जी की प्रसिद्धि बढ़ती जाती थी, इससे भी मुस्लिम नेताओं में ईर्ष्या बढ़ी । विशेषरूप से जिन्ना को गाँधी जी की समकक्षता तो दूर, उनके बाद का स्थान भी प्राप्त नहीं हो सका- इस कारण उनकी जलन बढ़ती ही गयी । जमील इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए कहता है -'आखिर मिस्टर जिन्ना को जलन किस बात की है ? इसीलिए न कि महात्मा गांधी मिस्टर जिन्ना को अपने बाद दूसरा दर्जा नहीं दे सके ।'[4] जमील तो यहाँ तक कहता

1-	भूले बिसरे चित्र-	पृ० 551
2-	सीधी सच्ची बातें-	पृ० 678
3-	,,	पृ० 179
4-	,,	पृ० 177

है कि -' वे (गाँधी) मुसलमानों की खुशामद करते हैं, जिन्ना को उन्होंने कायदे आज़म तक कह डाला है, वह मुसलमानों को अपने साथ लेना जरूर चाहते हैं। यह राम-रहीम का नारा-यह हिन्दुस्तानी, यह सब है ; लेकिन वे अपने मज़हब से, अपनी संस्कृति से मज़बूर हैं। वह मुसलमानों का सहयोग चाहते हैं, मुसलमानों को हिन्दुओं का गुलाम बनाकर।'[1]

मुसलमान अपनी अल्प संख्या के कारण हिन्दुओं की दासता को किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं करना चाहते थे और बराबरी का स्थान उन्हें भारत में मिलने की कोई संभावना नहीं दिखती थी इसलिए हिन्दुओं की दासता से मुक्ति पाने का उन्हें एक ही उपाय दिखता था, वह था 'देश का बँटवारा '। बशीर अहमद कहता है -' जिन्ना को गाँधी के बाद का दूसरा दर्जा नहीं चाहिए, उन्हें गाँधी के मुकाबले बराबरी का दर्जा चाहिए। गाँधी हिन्दू हैं, जिन्ना मुसलमान हैं। कोई एक-दूसरे से बड़ा-छोटा क्यों हो ? मैं कहता हूँ कि कांग्रेस के इस अड़ने से और गाँधी की इस ज़िद से देश का बँटवारा होकर रहेगा।'[2] यहाँ यह बताना भी समीचीन प्रतीत होता है कि बशीर अहमद और शिवदुलारी के प्रसंग के माध्यम से वर्मा जी ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि उस समय स्थिति इतनी गंभीर हो गयी थी कि दो हिन्दू-मुसलमान व्यक्तियों की पारस्परिक वार्ता कितनी कुरूपता के साथ साम्प्रदायिकता के रंग में रंग जाती थी और पढ़े लिखे लोगों में भी मारपीट की नौबत आ जाती थी।

'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ' का देशभक्तिपूर्ण गीत गानेवाले कवि इक़बाल ने सर्वप्रथम साम्प्रदायिकता से प्रभावित होकर पाकिस्तान का स्वप्न देखा था,[3] इसके पश्चात् मुहम्मदअली जिन्ना, जो किसी समय राष्ट्रीय नेता थे, ने इसकी (इक़बाल) भावनात्मक कल्पना को राजनीतिक रंग पहनाया और कालान्तर में कुछ तो मुसलमानों के इस दृष्टिकोण के कारण और कुछ गाँधी जी की त्रुटिपूर्ण नीति के कारण देश का दो भागों में विभाजन हो गया। गाँधी जी की अदूरदर्शिता को स्पष्ट करते हुए जसवन्त हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव के पूरे इतिहास का वृत्तांत कुलसुम को सुनाता है -' अंग्रेजों ने मुगल साम्राज्य समाप्त करके हिन्दुस्तान को जीता था। उसके श बाद अधिकांश सरकारी नौकरियों पर हिन्दू आये, और मुसलमानों के अन्दर अंग्रेजों के विरुद्ध एक प्रकार का आक्रोश भर गया। अपने ऊपर से यह आक्रोश हटाने

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 176

2- ,, पृ० 318

3- संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर-पृ० 611,622 तथा सीधी सच्ची-बातें- पृ० 644

के लिए अंग्रेजों ने मुसलमान को उकसाया । उन्हें विशेषाधिकार देकर अपना पक्षपाती बनाने की नीति अंग्रेजों ने अपनाई । सर सैयद के ज़रिए उन्होंने यह काम आरम्भ किया । और क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में यह हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव बढ़ने लगा । हिन्दू - यूनिवर्सिटी, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग क्रम चल पड़ा । और प्रथम महायुद्ध के बाद इस कृत्रिम भेद को वास्तविक भेद समझने कीसबसे बड़ी गलतीकर बैठे । असहयोग आन्दोलन के साथ खिलाफ़त आन्दोलन को जोड़कर उन्होंने मुसलमानों को एक अलग इकाई मानकर अपने साथ जो लेने की कोशिश की उससे गौणरूप से यह घोषित कर दिया कि मुसलमान की वफ़ादारी अपने देश के प्रति नहीं है, अपने मज़हब के प्रति है, और मज़हब के प्रति वफ़ादारी होने के नाते उसकी वफ़ादारी तुर्की के ख़लीफ़ा के प्रति है । वह आन्दोलन असफल हुआ-उसे असफल होना ही था, लेकिन उस आन्दोलन के बाद हिन्दू-मुस्लिम दंगों का एक देशव्यापी ताँता बँध गया । इस आन्दोलन से अंग्रेजों ने समझ लिया था कि उनके द्वारा कृत्रिम रूप से उत्पन्न किया जाने वाला हिन्दुओं और मुसलमानों का भेदभाव, गाँधी के एक ग़लत कदम से वास्तविकता बन गया है ।'[1]

गाँधी जी के राम-रहीम, ईश्वर-अल्ला के नारे एकता दिखलाकर भी विभेद के द्योतक थे और 1936 ई० में हिन्दुस्तानी नाम की भाषा के रूप में हिन्दी और उर्दू भाषाओं के सम्मिश्रण से एक कृत्रिम भाषा को जन्म देकर मानों गाँधी जी ने भारत में दो संस्कृतियों के अस्तित्व को स्पष्टरूपेण स्वीकार कर लिया था । यही स्वीकृति और भेदभाव देश के विभाजन का कारण बना ।[2]

देश के विभाजन के पश्चात् हिन्दू और मुसलमानों के स्थान-परिवर्तन के समय हिंसा के दृश्य को वर्मा जी ने 'सीधी सच्ची बातें' के कुछ पृष्ठों में साकार रूप दे दिया है ।[3] कुछ थोड़े से शब्द भी उस दृश्य को जीवंत कर देने की अपूर्व क्षमता रखते हैं - 'बड़े -बड़े काफ़िले चल रहे थे, हिन्दुओं के और मुसलमानों के फौजियों के संरक्षण में । देश के विभिन्न भागों से मार-काट की खबरें आ रही थीं, नित्य ही हजारों की संख्या में हत्याएँ हो रही थीं । स्त्रियों पर बलात्कार किया जा रहा था, लोगों से जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन कराए जा रहे थे ।'[4]

1-	सीधी सच्ची बातें-	पृ० 643
2-	,,	पृ० 644
3-	,,	पृ० 668 से 674
4-	,,	पृ० 670

`प्रश्न और मरीचिका ` के प्रथम भाग में भी स्वतंत्रता और विभाजन के पश्चात् हुए साम्प्रदायिक दंगों, लूटमार,कत्लेआम और आगजनी की घटनाओं की विस्तृत चर्चा की गयी है।[1] यही नहीं, सुरैया और बेगम आयशा नामकदो पात्रों के माध्यम से साम्प्रदायिक दंगों में फँसी स्त्रियों की विवशता और धार्मिक अन्तर्द्वन्द्व की कहानी को वर्मा जी ने बहुत कुछ मुखरित कर दिया है। इन दोनों माँ-बेटी के बीच कट्टर मुस्लिम लीगी शेख मुस्तफा कामिल का रोल युग प्रवृत्ति का सफल अंकन कर देता है। यह भेदभाव केवल मुसलमानों में ही था, ऐसी बात नहीं थी, हिन्दू-मुसलमान प्रत्येक सम्प्रदाय में समान रूप से इस घृणा का बीज जमकर बैठ गया था। इतना ही नहीं, देश के विगत इतिहास द्वारा सृजित परिस्थितियों में मनुष्य की विवशता की करुणा-कथा भगवती बाबू ने जनार्दनसिंह के द्वारा बड़ी कुशलता से कहलायी है। भारत के कुछ निवासी मजबूरी में मुसलमान बने और उनका धर्म छूटा,उसके पश्चात् परिस्थितियों ने उन्हें ओढ़े गये धर्म के कारण अपना देश छोड़ने के लिए भी विवश कर दिया।[2]

देश के बटवारे और स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दू-मुस्लिम समस्या के नये-नये रूप सामने आये। देश के मुसलमानों में भी दो दल हो गये- मुस्लिम लीगी मुसलमानों और राष्ट्रवादी मुसलमानों के। राष्ट्रवादी मुसलमान जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए त्याग किया था, जेल गये थे, वह तो पीछे रह गये और मुस्लिम लीगी नेता मुस्लिमों की समस्याओं को बढ़ा-चढ़ाकर रखने के कारण देश के नेताओं की शह पाने लगे। देश के नेता मुस्लिम-जनता की समस्या से बचने के लिए लीगी नेताओं को ऊँचे-ऊँचे पद देकर खुश रखने का यत्न करने लगे। इस समस्या को भी वर्मा जी ने `प्रश्न और मरीचिका ` में मुहम्मद शफी के द्वारा उठाया है।[3] और आजादी के 15 वर्ष बाद 1961 में इन्हीं मुहम्मद शफी की हत्या[4] से इस देश में व्याप्त साम्प्रदायिक घृणा के जहर को उपन्यासकार ने प्रदर्शित किया है।

`सामर्थ्य और सीमा ` में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का एक और पक्ष उभरकर आया है। वह यह कि मुस्लिम नेताओं ने अपने सम्प्रदाय पर होनेवाली ज्यादतियों का उल्लेख करके भारतीय नेताओं को ठगने का और स्वार्थ सिद्ध करने का अच्छा उपाय निकाल

1-	प्रश्न और मरीचिका-	पृ0 14,70
2-	,,	पृ0 33-34
3-	,,	पृ0 82-85
4-	,,	पृ0 465

लिया है उन्होंने राजनीतिक नेताओं की इस कमजोरी को खूब पहचान लिया है कि वे चुनाव में वोट पाने के भय से उनकी सही गलत सभी बातों को स्वीकार कर लेंगे। और इस प्रवृत्ति का लाभ उठाकर ये मुसलमान नेता प्राय: अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। मौलाना रियाजुलहक बड़ी निर्भीकता से कहते हैं -` जी आप रोकेंगे। दिल्ली में बैठे हुए अपने आक़ा को जानते हैं आप ? वह इस मस्जिद के बनने की इजाज़त देंगे। वह जयाली में मुसलमानों को जगह देंगे। उस इन्साफ-पसन्द फरिश्ते की वजह से ही हम मुसलमान हिन्दुस्तान में बसे हुए हैं और आप लोगों को अपना वोट देकर आप लोगों को ताक़तवर बनाए हुए हैं। तो हमारा कल्चर, हमारी ज़बान, हमारा मज़हब, इस सबको जगह मिलेगी यहाँ पर। मैं कल ही दिल्ली जाकर इस बात पर उनका ~~पेश~~ फैसला माँगूँगा। आप हमारे ~~ह~~ हक़ों को रौंद रहे हैं और आपकी ज्यादतियों की वजह से उनकी ताक़त घट रही है, मैं उनसे साफ कहूँगा। देखता हूँ आपकी मिनिस्टरी कैसे क़ायम रहती है।`[1]

उपर्युक्त समस्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा उत्पन्न की गई हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के समग्र रूप को वर्मा जी ने अपने विभिन्न उपन्यासों के माध्यम से विभिन्न दृष्टिकोणों से उपस्थित किया है।

पहले कहा जा चुका है कि देश में भारतीय तथा ब्रिटिश स्वार्थों के संघर्ष के फल-स्वरूप भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। इस कांग्रेस में प्रारम्भ में सौम्यदल का प्रभुत्व रहा लेकिन बाद में कुछ दिन के लिए उग्र दल का बोलबाला हो गया- उधर ब्रिटिश राजशासन की ओर से आवश्यकता के अनुसार दमन और शमन की द्वैध नीतियाँ प्रयुक्त होती रहीं। राष्ट्रीय आन्दोलनों में तीव्र गतिशीलता तो गाँधी जी के राजनीतिक क्षेत्र में आगमन के साथ आती है। उधर अमृतसर में `जालियाँवाला बाग` हत्याकाण्ड के द्वारा सर माइकेल ओडायर की ज्यादतियों की कहानियाँ देश-विदेश में गूँजने लगती हैं, इधर `रौलट-बिल` के द्वारा क्रान्तिकारियों के दमन की योजना ब्रिटिश सरकार ने बना ली। अभी तक गाँधी जी अपनी अहिंसा और सत्याग्रह की नीतियों के प्रयोग यत्र-तत्र देश में कर रहे थे, अब उन्होंने भारतीय जनता की मनोभावना का प्रतिनिधित्व और नेतृत्व करते हुए देशव्यापी आन्दोलन का सूत्रपात किया।

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 122

वर्मा जी ने 'भूले बिसे बिसरे चित्र' में इन राजनीतिक स्थितयों स्थितियों का संकेत मात्र करके तत्कालीन भारतीय जनता की मनोवृत्ति और अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति की है। गंगाप्रसाद और ज्ञानप्रकाश देश में व्याप्त राजभक्ति और देशभक्ति के प्रतीक बनकर आये हैं और गंगाप्रसाद की राजभक्ति का शनैः शनैः कम होकर समाप्त हो जाना इस प्रतीक की पर्याप्त सार्थकता और वास्तविकता प्रदान करते हैं। चौथे खण्ड के प्रारंभिक पृष्ठों में अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन में जाते हुए गंगाप्रसाद, ज्ञानप्रकाश और ब्रिटिश पार्लामेण्ट के सदस्य ग्रिफ़िथ्स के वार्तालाप से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का उद्घाटन वर्मा जी ने किया है। इन तीनों पात्रों की यात्रा और वार्तालाप से शासक और शासित का अन्तर, भारतीयों में एकता के अभाव की स्थिति, फिर भी गाँधी जी के नेतृत्व में निष्क्रियता से सक्रियता के ओर बढ़ने की प्रवृत्तियों का आकलन उपन्यासकार ने किया है। रेलगाड़ी, होटल इत्यादि सार्वजनिक स्थलों पर, बराबर पैसा देने पर भी अंग्रेज और भारतीय में भेदभाव बरता जाता था, इतना सब देखकर भी कुछ भारतीय जो सरकारी नौकरियों के कारण अंग्रेजी शासन के गुलाम हो गये थे, अंग्रेजों की न्यायप्रियता के कायल थे। जालियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के पश्चात् गंगाप्रसाद द्वारा अंग्रेजों को 'न्यायप्रिय, दयावान और उदार' कहना भारत के शिक्षित वर्ग की मानसिक पराधीनता की वृत्ति का द्योतन करता है। किन्तु उसी के सम वयस्क चाचा ज्ञानप्रकाश के माध्यम से वर्मा जी ने गाँधी जी के नेतृत्व के पश्चात् भारतीय जनता की राष्ट्रीय चेतना का निरूपण किया है। इन्हीं ज्ञानप्रकाश के संसर्ग से गंगाप्रसाद के हृदयगत भावों का परिवर्तन होता है।

भारतीय राजनीति में गाँधी जी के आगमन के पश्चात् की लगभग सभी प्रमुख घटनाओं अधिवेशनों, अधिवेशनों में हुए निर्णयों एवं उनकी भारतीय नेताओं व जनता पर हुई प्रतिक्रिया का वर्मा जी के उपन्यासों में यथावश्यक उल्लेख और विवेचन मिल जाता है। गाँधी जी के 'स्वदेशी आन्दोलन' और 'विदेशी बहिष्कार' को 'भूले बिसरे चित्र' के महत्वपूर्ण पात्र गंगाप्रसाद के साथ बड़ी सुन्दरता के साथ जोड़ा गया है - 'आन्दोलन चल रहा था। बड़ी तेजी के साथ-एक अजीब ढंग से। हड़तालें हो रही थीं, चरखा चलाया जा रहा था, खादी और स्वदेशी का प्रचार हो रहा था, विदेशी माल का बहिष्कार किया जा रहा था। जलूस निकलते थे और खुल्लमखुल्ला सरकार की निंदा की जाती थी; अंग्रेजों को गालियाँ दी जाती थीं। जौनपुर में इस आन्दोलन को दबाने की जिम्मेदारी कलक्टर ने गंगाप्रसाद को दे दी थी। और वह तत्परता के साथ निर्दयतापूर्वक अपनी जिम्मेदारी निबाह रहा था। जौनपुर की जेल

भर ग्यी थीं ; लोगों पर लम्बे-लम्बे जुरमाने किये गये थे । जौनपुर के अधिकांश कार्यकर्ता जेलों में पड़े थे ।"[1]

गाँधी जी के महत्वपूर्ण अनुयायी के रूप में ज्ञानप्रकाश के द्वारा असहयोग आन्दोलन के प्रचार का प्रयत्न भी 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में चित्रित किया गया है । मुस्लिम कांग्रेसी नेता फरहतुल्ला और विक्रमसिंह थानेदार का क्रमशः वकालत और सरकारी नौकरी छोड़ देना[2] इस बात की पुष्टि करते हैं कि देश में असहयोग आन्दोलन केवल नारा नहीं रह गया था उसे व्यवहार में भी लाया जा रहा था । थानेदार विक्रमसिंह द्वारा इस्तीफा दिलवाकर वर्मा जी ने यह स्पष्ट किया है कि सरकारी अफसरों में भी ब्रिटिश सरकार के प्रति विद्रोह की भावना घर करती जा रही थी । गंगाप्रसाद जैसे निष्ठावान नौकरशाही के प्रतीक और ब्रिटिश सत्ता के पक्षधर के मन में ब्रिटिश सरकार की रंग-भेद भावना के कारण ब्रिटिश सत्ता के प्रति वितृष्णा का भाव उत्पन्न करवाकर और ज्ञानप्रकाश के साथ भावनात्मक निकटता का भाव दिखलाकर वर्मा जी ने राष्ट्रीय चेतना की पराकाष्ठा प्रकाशित की है ।[3]

'भूले बिसरे चित्र' में जिन राजनीतिक घटनाओं और कांग्रेस के अधिवेशनों का उल्लेख हुआ है, वह निम्नलिखित हैं -

(1) जालियाँवाला बाग हत्याकाण्ड-सन् 1919 (पृष्ठ 395)
(2) साइमन कमीशन का बहिष्कार- (पृष्ठ 597)
(3) लार्ड इरविन की घोषणा- 31 अक्टूबर 1929 (पृ० 648)
(4) वाइसराय की स्पेशल ट्रेन पर बम विस्फोट(पृ० 665)
(5) लार्ड इरविन, गाँधी जी और मोतीलाल नेहरू के मध्य दिल्ली में वार्ता - (पृ० 656) और उसका असफल होना (पृ० 665)
(6) 2 मार्च 1930 को महात्मा गाँधी द्वारा लार्ड इरविन के नाम पत्र- जिसमें सत्याग्रह आन्दोलन की घोषणा(पृ० 686)
(7) 5 अप्रैल से नमक कानून तोड़ने का श्री गणेश,साबरमती में चुने हुए सत्याग्रहियों का एकत्रित होना और महात्मागाँधी के साथ नमक-कानून तोड़ने के लिए 12 मार्च को दांडी के लिए प्रस्थान(पृ० 696)

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 467
2- " पृ० 455
3- " पृ० 549-550

(8) अमृतसर अधिवेशन- 26 दिसम्बर से (पृ० 395)[1]

(9) लखनऊ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग का समझौता (पृ० 412)

(10) कलकत्ता में कांग्रेस का महत्वपूर्ण अधिवेशन-4 सितम्बर से (पृ० 440)

(11) 8 जुलाई सन् 1921 को कराची में खिलाफत परिषद (पृ० 467)

(12) 1922 ई० में अहमदाबाद कांग्रेस- आन्दोलन को जोर से बढ़ाने का निर्णय- (पृ० 491)

(13) मेरठ कांस्पिरेसी केस का उल्लेख -(पृ० 637)

(14) लाहौर कांग्रेस-जवाहरलाल नेहरू को अध्यक्ष बनाने की गाँधी जी की इच्छा-(पृ० 644)

(15) 16 नवम्बर को इलाहाबाद में सर्वदल सम्मेलन-इसमें वाइसराय की घोषणा की देश के नवयुवकों पर प्रतिक्रिया का संकेत (पृ० 649)

(16) साबरमती में कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की मीटिंग-सत्याग्रह आन्दोलन की रूपरेखा पर विचार (पृ० 685)

उपर्युक्त महत्वपूर्ण घटनाओं और अधिवेशनों के ढाँचे के बीच वर्मा जी ने 1930 ई० तक के भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के विकास के विभिन्न रंगों को भरकर तत्कालीन इतिहास का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार अपने 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' उपन्यास में वर्मा जी ने स्वतंत्रता-पूर्व देश की विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की गतिविधि को समाकलित किया है और यह बताने की चेष्टा की है कि देश की स्वतंत्रता के लिए अपूर्व उत्साह होते हुए भी कुछ ऐसा भी था जिसके कारण देश की स्वतंत्रता की अवधि आगे बढ़ती जाती थी। कांग्रेस, क्रांतिकारी दल और समाजवादी नेताओं के पारस्परिक विग्रह और गैर-जिम्मेदार व्यवहार के कारण उन्हें लक्ष्य प्राप्ति में सफलता प्राप्त नहीं होती थी। किन्तु जैसा कि अज्ञेय जी ने लिखा है, 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' राजनैतिक आन्दोलन के तीन रास्तों के - गाँधीवादी, कम्यूनिस्ट और आतंकवादी सम्प्रदायों के-अध्ययन के नाम पर वास्तव में राजनैतिक संघर्ष के परिपार्श्व में व्यक्तियों का ही चित्रण है।'[2] इस सम्पूर्ण उपन्यास में सन् 1930-31 के

1- कांग्रेस का इतिहास- ले० पट्टाभि सीतारम्मैया (सं० हरिभाऊ उपाध्याय) में अमृतसर अधिवेशन की तारीख नहीं दी गई है। - पृ० 145 शेष सभी तिथियाँ और विवरण 'कांग्रेस का इतिहास' के आधार पर सही है।

2- सच्चिदानंद वात्स्यायन-हिन्दी साहित्य-एक आधुनिक परिदृश्य-पृ० 91

समय के अनुसार कांग्रेस के जुलूस हैं, कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की बैठक, पुलिस अधिकारियों का लाठी-चार्ज, विलायती कपड़े की दूकानों पर धरना, कम्यूनिस्टों की गिरफ्तारी, क्रांतिकारियों द्वारा खजाने लूटने के चित्र विपुल मात्रा में हैं, किन्तु इस समस्त पर्यावरण के पीछे एक अहम्मन्य ताल्लुकेदार रामनाथ हैं और उनके तीन पुत्र हैं जो देश-विदेश की राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने लिए अलग-अलग पंथ का चयन करते हैं, किन्तु उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अपनी परम्परागत अहम्मन्यता से ओतप्रोत दिखलाई पड़ता है। लेकिन इस परिवार से हटकर वर्मा जी ने देश के समस्त परिवेश की नब्ज को पकड़ने की सफल चेष्टा भी की है, इस यथार्थता से भी असहमत नहीं हुआ जा सकता।

विभिन्न राजनीतिक,पार्टियाँ-और भारतीय नेता

कांग्रेस के नेताओं और कार्यकर्ताओं को अपना स्वतंत्रता आन्दोलन चलाने में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता था। देश प्रेम की उत्कट भावना तो उनमें थी ही, किन्तु कभी-कभी इस भावना को प्रदर्शित भी करना पड़ता था जिससे अंग्रेज शासकों पर उसका प्रभाव पड़े।जनता इस आन्दोलन में उनके साथ थी,किन्तु उसके साथ रोजी-रोटी का प्रश्न भी जुड़ा था, गाँधी जी की अहिंसा को सिद्धांततः मानकर भी उसको निभाने वा कम थे, राजनीतिक नेताओं में पदलोलुप्तता,अदूरदर्शिता और पारस्परिक विद्वेष की भावना विधमान थी। इन सभी समस्याओं को वर्मा जी ने 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में उठाया है। दयानाथ के घर कांग्रेस पार्टी की बैठकों में नेताओं की बहस होती थी। उनमें स्वयंसेवकों को एकत्रित करने, लाठीचार्ज के समय अडिग रहने और आन्दोलन को पूरी शक्ति से चलाये जाने की समस्याओं पर विचार होता था जिसे उपन्यासकार ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। इसी प्रकार ऐसे समय में जबकि सभी राष्ट्रीय संस्थाएँ ब्रिटिश सरकार द्वारा गैरकानूनी घोषित कर दी गयी हों- क्रांतिकारियों और कम्यूनिस्टों को अपनी संस्था का काम चलाने में किन-किन असुविधाओं का सामना करना पड़ता था इस पर भी वर्मा जी ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रकाश डाला है। क्रांतिकारियों में स्वतंत्रता के लिए पूरा उत्साह था, यहाँ तक कि अपनी जान न्यौछावर करने के लिए भी तैयार थे ; फिर भी उनका रहस्यमय जीवन कभी-कभी उनके मन-मस्तिष्क को उद्वेलित कर डालता था, इसे मनमोहन के द्वारा व्यक्त किया गया है -' हम यह खजाना क्यों लूट रहे हैं ? इसलिए न कि हमें अस्त्र-शस्त्र मँगाने के लिए रुपया चाहिए। यह रुपया हमारे निजी उपयोग में नहीं आएगा, यह रुपया

हम देश के काम के लिए लुट रहे हैं। और इस सबके बदले हमें मिलता क्या है ? हम खुले आम चलने से डरते हैं, हम अपना नाम नहीं ज़ाहिर कर सकते, हम आपस में एक दूसरे से खुल कर नही मिल सकते। हर समय हमें एक कृत्रिम जीवन बनाए रखना है ; हमें एक आवरण के नीचे रहना है, और उस आवरण को हटाकर साँस लेने का भी तो हमारे पास समय नहीं है।"[1] पार्टी के नेता के इन विचारों से क्रांतिकारियों की मानसिक उथल-पुथल को अभिव्यक्ति दी गई है। पुलिस क्रांतिकारियों को प्रताड़ित करके मुखबिर बनने के लिए विवश करती थी। उन्हें अपनी पार्टी का कार्य चलाने के लिए किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मिल पाती थी और उन्हें अवैध साधनों को अपनाना पड़ता था- इन सभी तथ्यों पर वर्मा जी ने प्रकाश डाला है। कम्यूनिस्ट पार्टी का लक्ष्य एकमात्र देश की स्वतंत्रता का ही नहीं था, उसका उद्देश्य था- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद से मुक्ति पाकर साम्यवादी समाज की स्थापना करना। स्वतंत्रता -संग्राम के समय देश में कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं को किन परेशानियों और समस्याओं का सामना करना पड़ता था - इस पर वर्मा जी ने विस्तार से विचार किया है। ब्रह्मदत्त कहता है -" कांग्रेस के अन्दर रहकर हमें जितनी सुविधाएँ मिल सकती हैं, बाहर रहने पर उतनी सुविधाओं का मिलना असम्भव है। यही नहीं, असुविधाओं के मिलने की सम्भावना अधिक है। ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति के खिलाफ सारा देश हमारा साथ देगा सिर्फ उसी समय, जब हम कांग्रेसमैन हैं। वर्ना अगर हम सिर्फ कम्यूनिस्ट हैं तब हमारा साथ देनेवाला कोई न मिलेगा।"[2] किन्तु भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि कामरेड मारीसन कांग्रेस के साथ मिलने का विरोध करते हैं -" हम कम्यूनिस्टों के कांग्रेस ज्वाइन करने में एक बहुत बड़ा खतरा है ; हम लोग बड़ी आसानी से अपने लक्ष्य से गिर जायेंगे, अपने ध्येय को भूल जायेंगे। कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है, और राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता में उतना ही विरोध है, जितना फासीज्म और कम्यूनिज्म में है। राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे में अन्तर्राष्ट्रीयता कभी नहीं पनप सकती- मैं इसका विश्वास दिलाता हूँ।"[3] कामरेड मारीसन और ब्रह्मदत्त के वार्तालाप से वर्मा जी ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि उस समय कम्यूनिस्ट कार्यकर्ताओं में सैद्धान्तिक मतभेद था। इसके अतिरिक्त उमानाथ के माध्यम से वर्मा जी ने भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं के पथ में आनेवाली कठिनाइयों का खुलासा किया है।

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 259

2- ,, पृ० 193-194

3- ,, पृ० 194

उमानाथ सोचता है कि साहित्यकारों के माध्यम से देश में साम्यवादी विचारधारा का प्रचार हो सकता है, किन्तु साहित्यकारों के बीच पहुँचकर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता हैकि वे कला की परम्परा और रुढ़ियों से चिपके हैं तथा वे 'सब-के-सब अपने-अपने ढंग के अजीब-गरीब प्राणी' हैं। मजदूर-नेताओं का कार्यक्रम विध्वंसात्मक और बहुत कुछ स्वार्थबद्ध है। जो सबसे बड़ी कठिनाई कम्यूनिस्टों के समक्ष थी वह यह कि ब्रिटिश सरकार कम्यूनिस्टों को 'साम्राज्य-वाद का शत्रु' समझने के कारण अपना प्रमुख शत्रु समझती थी अत: कम्यूनिस्टों पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी। इसी कारण उमानाथ को विवश होकर स्वदेश छोड़ना पड़ता है। अज्ञेय जी ने एक स्थल पर लिखा है -"आतंकवादी का चित्र घटिया रोमानी उपन्यासों जैसा है और बिल्कुल ही झूठ हो जाता अगर जहाँ-तहाँ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की पैठ उसमें प्राण नहीं डाल देती। कम्यूनिस्ट को तो लेखक ने स्पष्टतया विद्रूप और तिरस्कार का पात्र बनाया है और उसके साथ लेखक के बर्ताव में उतनी ही सच्चाई है जितनी कि सरकस के विदूषक की पटापट बजने वाली चमड़े की मार में होती है। तीन पंथियों में कोई भी यथार्थ और सामाजिक मानव-चरित्र नहीं है, न उनके द्वारा तय किये गये टेढ़े मेढ़े रास्ते ही वास्तविक, यथार्थ और विश्वास्य हैं।"[1] इस कथन से सहमत हो पाना कठिन है। प्रभानाथ के चरित्र में घटिया रोमानी उपन्यास जैसा कुछ नहीं है, क्या किसी पार्टी के नेता व कार्यकर्ता का अपना व्यक्तिगत जीवन कुछ भी नहीं होता। प्रभानाथ अपने कर्तव्य का पूर्णतया निर्वाह करता है। इसी प्रकार उमानाथ भी इसी समाज का एक 'व्यक्ति' है। विदेश में दीक्षित एक कम्यूनिस्ट लीडर को वर्मा जी ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। कम्युनिस्टों के प्रति सामान्य जनता की धारणा का कुछ-कुछ प्रतिबिंब उमानाथ में देखा जा सकता है। उसका स्वभाव हँसमुख, मजाकिया और कुछ गैर-जिम्मेदार-सा दिखाया गया है। फिर भी उसमें सूझबूझ और चीजों को तर्क के आधार पर समझने का अभाव कहीं भी नहीं दिखता। उसके जिस गैर-जिम्मेदार स्वभाव की चर्चा ऊपर हमने की है, उसके बारे में ब्रह्मदत्त कहता है-"मेरा मतलब यह है कि जिस असावधानी के साथ तुम काम करते हो, जिस लापरवाही के साथ तुम बात करते हो, उससे तुम किसी हालत में सफल नहीं हो सकते। यही नहीं, बल्कि मैं तो यहाँ कहूँगा कि तुम खुद खतरे के मुँह में फाँद रहे हो और अपने साथियों को भी तुम खतरे में में ढकेल सकते हो। तुम जानते ही हो कि कम्यूनिस्ट पार्टी पर सरकार की कड़ी नज़र है। आज तुमने एक अनजाने आदमी के सामने खुलकर उस पर यह प्रकट करके कि तुम कम्यूनिस्ट पार्टी

1- हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, सच्चिदानंद वात्स्यायन, पृ० 91

के प्रमुख प्रतिनिधि हो, अदूरदर्शिता का परिचय दिया है।[1] अपनी इस असावधानी के कारण उमानाथ को स्वदेश छोड़ना पड़ता है। इसी प्रकार तीनों भाइयों को अपने सिद्धान्त और अपने पथ पर पूर्ण विश्वास होने पर भी अपने घर, देश और प्राण का त्याग करना पड़ता है, इस सम्बंध में एक आलोचक का कथन है -"उपन्यास पढ़कर एक हम एक दु:ख का अनुभव करने लगते हैं और सोचने लगते हैं कि जीवन के लिए क्या कोई सीधा राजपथ भी है ? एक ही परिस्थिति में रहकर तीनों भाइयों ने अपने जीवन में भिन्न-भिन्न पथों को स्वीकार किया। तीनों ने अपने-अपने पथों में जीवन की गरिमा देखी, तीनों में विश्वास की इतनी दृढ़ता थी कि तीनों अपने पथ पर अटल रहे। पर क्या किसी ने जीवन की सच्ची गरिमा प्राप्त की ? एक को अपना पथ छोड़ना पड़ा, दूसरे को अपना देश छोड़ना पड़ा और तीसरे को अपने प्राण छोड़ने पड़े। क्या यह उनकी विजय है या पराजय ? परन्तु हम जीवन में सफलता कहेंगे किसे ? सभी के पथ भिन्न-भिन्न होते हैं। कौन अच्छा है या बुरा, इसका निर्णय कौन करेगा ? यही तो जीवन के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' हैं।"[2]

वर्मा जी के उपन्यास का 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' नाम ही समीक्षकों की कटु आलोचना का मूल कारण है और इसी नाम के कारण लोगों को भ्रम होता है। इस सम्बंध में डॉ० सुषमा धवन का कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है -" आलोचकों ने उपन्यास की मूल भावना को ग्रहण करने में इसलिए भूल की है कि उसका नाम भुलावे में डालने वाला है और दूसरे, इसमें [illegible] राजनीति सम्बंधी वाद-विवाद विस्तृत हैं। लेखक ने चरित्रों के आदर्शवादी विचारों के आवरण में छिपी मनुष्य की स्वार्थपरता व अहंमन्यता को अनावृत किया है और आदर्श तथा व्यवहार की यह विषमता मध्यवर्ग के जीवन की विडम्बना है। इस दृष्टिकोण से लेखक ने पात्रों के जीवन का यथार्थानुरूप चित्रण किया है।"[3] अपने उपन्यास का 'टेढ़े मेढ़े - रास्ते' नाम रखकर भगवतीबाबू ने मात्र यह बताने का प्रयास किया है कि स्वतंत्रता-संग्राम के समय विभिन्न राजनीतिक कार्यकर्ताओं को सत्य की लड़ाई लड़ते समय भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था क्योंकि उनका शत्रु अपार शक्ति-सम्पन्न था। इन्हीं कठिनाइयों के कारण उनके रास्ते टेढ़े मेढ़े थे।

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के अतिरिक्त वर्मा जी ने 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास में भी

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृष्ठ- 432-433

2- हिन्दी कथा साहित्य-पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पृ० 158-159

3- हिन्दी उपन्यास - डॉ० सुषमा धवन, पृ० 104

कांग्रेस और कम्यूनिस्ट पार्टी के स्वतंत्रता-संघर्ष का युगानुरूप चित्रण किया है। इस उपन्यास में वर्मा जी ने 1939-1948 के भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला है। देश का राजनीतिक वातावरण उसके सामाजिक और आर्थिक विघटन और संक्रमण का कारण बन रहा था। देश में गाँधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय-स्वतंत्रता आन्दोलन जोर से चल रहा था किन्तु उसकी भी अपनी सीमाएँ थीं। गाँधी जी के साथ-साथ कांग्रेस के नेता पूंजीपतियों के प्रभाव में फँसते जा रहे थे और गाँधी व सुभाष के पारस्परिक मनोमालिन्य के कारण कांग्रेस में आन्तरिक मतभेद प्रबल हो गया था। इस समय नेहरू जी द्वारा सुभाषचन्द्र बोस का साथ छोड़कर गाँधी जी के साथ समझौता करने के कारण देश के तरुण नेताओं में पारस्परिक व्यक्तित्व की टकराहट कीसमस्या उठ खड़ी हुई। जवाहर-लाल नेहरू के प्रति गाँधी जी के पक्षपातपूर्ण रवैये के कारण मुहम्मद अली जिन्ना में तो इतनी तीव्र प्रतिक्रिया हुई कि कालान्तर में नेतृत्व की लालसा के कारण देश को विभाजन का अभिशाप भोगना पड़ा। इस सम्पूर्ण स्थिति की बड़ी यथार्थवादी व्याख्या वर्मा जी ने की है।

इसके अतिरिक्त गाँधी जी के अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत में कहाँ कमजोरी थी इसे वर्मा जी ने विभिन्न पात्रों के विचार-विमर्श के द्वारा प्रस्तुत किया है। गाँधी जी की अहिंसा में जनता को अटूट विश्वास था, किन्तु दूसरी ओर उसमें निहित कायरता और निष्क्रियता का भी अनुभव जनता और नेताओं को होता था, कारण स्पष्ट था- स्वतंत्रता संग्राम की धीमी गति लोगों की प्रतीक्षा की घड़ियों को असह्य बना रही थी। गाँधीवादी दर्शन भारतीय समाज के लिए पूजा की वस्तु बन सकता था, किन्तु वह सम्पूर्ण भारतीय जनता का चरित्र नहीं बन सकता था। सत्य, अहिंसा त्याग और सहनशीलता वैयक्तिक गुण हैं, वह सम्पूर्ण समाज पर एक साथ थोपे नहीं जा सकते। जगतप्रकाश कहता है - गाँधी जी ने हमें नई चेतना दी, गाँधी महात्मा हैं, गाँधी सत्य और अहिंसा के पुजारी हैं, गाँधी का सर्वविदित जीवन त्याग और निष्ठा का जीवन है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। सब-कुछ ठीक है, लेकिन गाँधी मनुष्य हैं, और मनुष्य होने के नाते गाँधी अडिग नहीं हैं, गाँधी गलतियाँ कर सकते हैं। सत्य सापेक्ष होता है, अहिंसा कायरता का रूप धारण कर सकती है। लेकिन यह चरित्र, ईमानदारी, त्याग, निष्ठा-ये सब तो वैयक्तिक गुण हैं, इन गुणों को दस-बीस वर्षों में घोर पतित और चरित्रहीन समाज पर आरोपित नहीं किया जा सकता। सक्रिय गाँधी तो व्यक्ति गाँधी है, समाज गाँधी के आदेशों पर चलता हुआ निष्क्रिय हो गया है।'[1] ऐसा नहीं था

1- सीधी सच्ची बातें - पृ० 667

कि गाँधी जी ने अहिंसा का व्रत बिना सोचे समझे उठाया था, सैकड़ों वर्षों से गुलामी की जंजीरों में जकड़े देश से सुसंगठित सशस्त्र क्रांति की आशा की भी नहीं जा सकती थी ; गाँधी जी ने देश की आन्तरिक और भौतिक शक्ति को टटोलकर ही अहिंसा और सत्याग्रह के पथ का निर्णय लिया था। किन्तु सामान्य अपढ़ जनता से उससहनशीलता और दृढ़ता की अपेक्षा करना भी गलत था जिसकी अहिंसा और सत्याग्रह में अत्यधिक आवश्यकता होती है। जमील कहता है -" मैं महात्मा गाँधी को उनकी अहिंसा के लिए दोष नहीं देता, महात्मा गाँधी देश की नस पहचानते हैं। यह मुल्क हिंसा अपनाने के क़ाबिल ही नहीं रह गया है - इस क़दर बुज़दिली और नामर्दी भर गई है इसमें। अगर इसे जगाया जा सकता है, ऊपर उठाया जा सकता है, तो सिर्फ अहिंसा से। लेकिन अहिंसा का व्रत बड़ी मुश्किल बात है। खुद महात्मा गाँधी उस व्रत पर क़ायम रह सकते हैं, मुझे इस पर शक है। इस अहिंसा के व्रत के सबसे बड़े दुश्मन हैं क्रोध, निराशा और कटुता। इन कमज़ोरियों में इन्सान भटक जाता है।"[1] इसीलिए हम देखते हैं कि जब गाँधी जी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के पश्चात् बम्बई की ए०आई०सी०सी० की बैठक में 'करो या मरो' का नारा दिया तो सुसंगठित नेतृत्व के अभाव में सामान्य जनता इसका अर्थ 'मारो या मरो' सहज ही लगा लिया। बम्बई में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के पास होते ही और गाँधी जी के 'करो या मरो' नारे के उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने सभी शीर्षस्थ कांग्रेसी नेताओं को जेल में ठूँस दिया था इसलिए छोटे-छोटे नेता और सामान्य जनता दिग्भ्रमित-सी हिंसा की ओर अभिमुख हो गयी थी। इतना ही नहीं जगतप्रकाशकेविचारानुसार गाँधी जी ने ब्रिटिश सरकार, मिस्टर जिन्ना और देश के मुसलमानों के प्रति कटु होकर ही अहिंसा के मार्ग से हटा हुआ 'करो या मरो' का उत्तेजक नारा जनता को दिया था। किन्तु इसके पहले कि कांग्रेसी नेता कुछ करते, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया-इस प्रकार कांग्रेस पार्टी कुछ कर सकने में असमर्थ हो गयी।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि कांग्रेस का नेतृत्व और कार्यक्रम त्रुटिपूर्ण था तो देश की दूसरी पार्टियाँ क्यों नहीं सामने आईं ? इस सम्बंध में वर्मा जी ने अपना नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। देश में कांग्रेस के अतिरिक्त कम्युनिस्ट पार्टी ही ऐसी थी जो भूखी, अकालपीड़ित और महँगाई से त्रस्त जनता की सहानुभूति प्राप्त कर सकती थी, लेकिन

1- सीधी सच्ची बातें - पृष्ठ-625

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की अपेक्षा रूसी सशस्त्र क्रांति का इतिहास उसका मार्गदर्शक बना रहा, और वे राष्ट्रीयता की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रमुखता देते रहे। इसलिए भारतीय जनता कम्युनिस्ट पार्टी में अपना पूर्ण विश्वास कभी नहीं रख पायी। दूसरी बात यह भी थी कि गाँधी जी का कुछ ऐसा जादू भारतीय जनता पर छा गया था कि कम्युनिस्ट पार्टी का एक पक्ष गाँधी जी के साथ रहते हुए अपना कार्यक्रम चलाने में अपनी भलाई समझता था। इसी कारण जसवन्त कहता है - 'मैंने कम्युनिस्ट पार्टी को अन्दर से देखा है, और मैं समझता हूँ कि देश की जनता का विश्वास प्राप्त करने में अभी कम्युनिस्ट पार्टी को लम्बा समय लगेगा।'[1] और जमील भी स्वीकार करता है -'इसलिए मैं महात्मा गाँधी वाली गुलामी के तौक़ के हक में हूँ। वैसे मैं गाँधी के साथ नहीं हूँ, कदम-कदम पर मेरा गाँधी के उसूलें से मतभेद है, लेकिन मैं गाँधी के इस मूवमेण्ट के साथ हूँ, क्योंकि यह मूवमेण्ट ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ है। जंग के वक्त यह आपसी फूट और भेदभाव घातक होंगे।'[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कांग्रेस और कम्युनिस्ट दोनों ही पार्टियाँ देश को यथाशीघ्र स्वतंत्रता दिला पाने में असमर्थ हो रही थीं। सुभाषचन्द्र बोस भी 'इन्डियन नेशनल आर्मी' का निर्माण करके स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील थे और उनके नेतृत्व में देश को स्वतंत्र होने की आशा बँधी थी किन्तु बंगालियों ने सुभाष के नेतृत्व को लेकर जो प्रान्तीयता का रुख अपनाया था, उसके कारण सुभाषचन्द्र बोस को कांग्रेस से एकदम अलग हो जाना पड़ा। तदुपरांत सुभाषचन्द्र बोस के असामयिक निधन और आई०एन०ए० की असफलता से देश की आशा फलवती न हो सकी। इन सभी संस्थाओं की आन्तरिक कमजोरियों को दिखलाने के पीछे वर्मा जी का एकमात्र उद्देश्य भारतीय जनता में व्याप्त पारस्परिक विग्रह, विद्वेष और अनैतिकता की ओर पाठक का ध्यान खींचने का है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब सभी राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति लेखक ने अपनी अनास्था व्यक्त की है तो देश को स्वतंत्रता कैसे प्राप्त हुई? यहाँ भी वर्मा जी ने अपना नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है -' यह स्वतंत्रता हमें गाँधी ने नहीं दिलाई है, यह स्वतंत्रता हमें दिलाई है हिटलर ने, यह स्वतंत्रता हमें दिलाई है सुभाष ने। ब्रिटेन बेतरह कमजोर और तबाह हो गया है। हिटलर ने स्वयं मरते-मरते ब्रिटेन को बेतरह तोड़ दिया है। वह स्वतंत्रता

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 645

2- ,, पृ० 181

हमें दिखाई है सुभाष ने जिसने हिन्दुस्तानी सेना और नौ-सेना में हिंसा और विद्रोह विद्रोह के बीज बो दिए थे।"[1] इस सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण ब्रिटेन अत्यधिक संत्रस्त हो गया था और भारत में देशव्यापी आन्दोलनों और विद्रोह के कारण ब्रिटेन को विवश होकर भारत पर अपनी सत्ता बनाए रखने के मोह का त्याग करना पड़ा। ब्रिटिश सरकार की आन्तरिक कलह ने इसमें आहुति का कार्य किया था -"ब्रिटिश सरकार के प्रति देश में विद्रोह मुखर होता जा रहा था और विद्रोह के मुखर होने में सहायक हो रही थी, ब्रिटेन की नई मजदूर सरकार तथा भारत में स्थित ब्रिटिश नौकरशाही में तीव्र मतभेद। ब्रिटेन की नई मजदूर सरकार जल्दी से जल्दी भारतवर्ष को स्वराज्य देकर भारत की समस्या से छुटकारा पाना चाहती थी।"[2] इस प्रकार वर्मा जी का विचार है कि परिस्थितियाँ कुछ ऐसा मोड़ ले रही थीं कि ब्रिटेन भारत को स्वतंत्रता देने के लिए विवश हो गया था। ब्रिटिश सरकार जिस हिन्दुस्तानी सेना के बल पर इस देश में हुकूमत कर रही थी, उसी में बगावत का सूत्रपात हो गया था, ब्रिटेन का अर्थतंत्र स्वयं लड़खड़ा रहा था और भारत की जनता में दरिद्रता और भूख से त्रस्त होने के कारण ब्रिटिश शासन के प्रति घृणा बहुत तेजी से बढ़ रही थी- इन्हीं परिस्थितियों के अधीन होकर ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वतंत्र किया है।

भारत की स्वतंत्रता के कुछ दिन पूर्व की कांग्रेस की स्थिति का भी वर्णन इस उपन्यास में वर्मा जी ने संकेत कर दिया है। स्वतंत्रता के पूर्व ही देश के वरिष्ठ कांग्रेसी नेता जेलों से मुक्त कर दिये गये और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में देश की राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गाँधी के हाथ से निकलकर जवाहरलाल नेहरू के हाथ में आ गया और वह भी महात्मा गाँधी की इच्छा से। महात्मा गाँधी के उत्तराधिकारी नेहरू जी पूर्णरूपेण शक्ति में आ गये और गाँधी जी में देश के बटवारे के कारण एक पराजय और निराशा का भाव गहराता चला गया। साम्प्रदायिक दंगों के कारण गाँधी जी के हृदय में बड़ी पीड़ा थी, संभवतः गाँधी जी ने कल्पना भी नहीं की थी कि देश के बँटवारे का परिणाम इतना भयंकर होगा। गाँधी जी अपने प्रवचनों द्वारा जनता की हिंसा को जितना शांत करना चाहते थे, घृणा का जहर जनता में उतना ही अधिक उतरता जाता था। लोग खुले आम गाँधी जी की कटु आलोचना करने लगे थे। उधर देश के प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू और उप-प्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल में मतभेद बढ़ रहा

1- सीधी सच्ची बातें - पृ० 667

2- ,, पृ० 647-648

था - इस सम्पूर्ण राजनीतिक स्थिति का अत्यंत तर्कपूर्ण विवेचन वास्तविक और यथार्थ धरातल पर वर्मा जी ने प्रस्तुत किया है। इस सम्बंध में प्रख्यात समीक्षक मन्मथनाथ गुप्त का कथन उचित प्रतीत होता है -`इसमें भगवती बाबू ने अपने स्वतंत्र विचार निर्भीकता के साथ देश और इतिहास के सामने रख दिए हैं। वह किसी बात से डरे नहीं हैं।`[1]

वर्मा जी के उपर्युक्त विचारों में तथ्य है इससे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता, किन्तु इस बात से भी असहमत नहीं हुआ जा सकता कि वर्मा जी कांग्रेस, महात्मा गाँधी और उनकी अहिंसा,सत्याग्रह आदि की नीतियों की व्याख्या करते समय आवश्यकता से अधिक कटु हो गये हैं। `अहिंसा की अफीम खिला-खिलाकर गाँधी हमें संज्ञाहीन बना रहा है (पृ० 38)` यह अहिंसा हमारी नस-नस में भर गई है और यह अहिंसा एक बहुत बड़े ढोंग में लिपटी हुई कायरता के सिवा कुछ नहीं है।`(पृ० 61)`हमारा देश कायरों और ढोंगियों का देश रहा है।` (पृ० 41)- अपने इस प्रकार के विचारों को प्रकट करते हुए वर्मा जी ने अतिशयोक्ति से काम लिया है और उपन्यास में इनके बार-बार दुहराये जाने के कारण उपन्यास की गति और रोचकता में बाधा पड़ती है। ऐसा नहीं है कि कथाकार ने कहीं भी गाँधी जी और उनकी अहिंसा की नीति की हृदय से प्रशंसा न की हो। जसवंत,जो पहले गाँधी जी के नेतृत्व को उखाड़ फेंकने की बात कहता है, वही बंगाल के अकाल के समय बड़ी भावुकता के साथ गाँधी जी का स्मरण करता है -`यह हमारा दुर्भाग्य है कि मानवता दया,त्याग और प्रेम का एक-मात्र प्रतिनिधि गाँधी जेल में बंद है, उसके सब अनुयायी जेलों में ठूँस दिये गये हैं। महात्मा गाँधी और उनके अनुयायी ही बंगाल को बचा सकते थे,लेकिन आज तो उनके विरोधी तत्व ही शक्तिशाली हैं।`[2]उपन्यास के विभिन्न पात्रों द्वारा गाँधी जी के व्यक्तित्व और उनकी नीतियों के प्रति निष्ठा,श्रद्धा और असहमति के बीच अन्तर्द्वन्द्व को वर्मा जी ने चित्रित किया है।

य इसी प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों का चित्रण करते समय भी कथाकार ने उनकी भूल दुर्बलता की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित किया है। जगतप्रकाश और जमील के अतिरिक्त वर्मा जी ने कमलाकान्त,जसवन्त,कुलसुम, त्रिभुवन और मालती को साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित दिखाया है - ये सभी पूँजीपति वर्ग से सम्बंधित हैं। इनके लिए कम्युनिज़्म मात्र फैशन की चीज़ है और विशेषतया कुलसुम तो अपने अहं को तुष्ट

1- मन्मथनाथ गुप्त-`सफल युगान्तकारी उपन्यास -`सीधी सच्ची बातें प्रकाशन-समाचार- फरवरी 1968,पृ० 18

2- सीधी सच्ची बातें- पृ० 560

करने के लिए सबको बराबर मानने का दिखावा करती है। वह सबके समक्ष इस बात को स्वीकार करती है -" हम लोगों के लिए कम्युनिज़्म एक फैशन है, मैं यह स्वीकार करती हूँ। कम से कम अपनी बाबत तो मैं यह कह ही सकती हूँ।"[1] कुलसुम का कथन उस समय एकदम सत्य प्रतीत होता है जब हम देखते हैं कि जसवन्त, कमलाकान्त, त्रिभुवन आदि उपन्यास के उत्तरार्द्ध में अपनी-अपनी जमीन-जायदाद सम्हालने में व्यस्त हो जाते हैं। इस प्रसंग में एक आलोचक का कथन द्रष्टव्य है -"सबसे मजेदार बात यह है कि जितने भी नौजवान गाँधी का विरोध कर रहे हैं और समाजवाद की बातें करते हैं, वे धनी परिवार के हैं। भगवती बाबू इस तथ्य को पकड़ने के लिए बहुत धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने यह समझ लिया कि भारत में समाजवादी आन्दोलन की कमजोरी किस जगह पर है।"[2] इसके अतिरिक्त वर्मा जी ने यह भी दिखाया है कि ये सभी कम्युनिस्ट विचारधारा के समर्थक युवा-वर्ग के हैं, इनकी बहकी-बहकी बातों में प्रौढ़ चिंतन का अभाव है, इसीलिए राजनीति सम्बंधी उनका समस्त तर्क-वितर्क मात्र समय व्यतीत करने का साधन बनकर रह जाता है। देश की राष्ट्रीय चेतना ~~चचचच~~ को उनका सक्रिय सहयोग कभी नहीं मिलता।

जगतप्रकाश और जमील अहमद ही दो ऐसे पात्र हैं जिनमें मार्क्सवाद के प्रति अटूट निष्ठा दिखलायी पड़ती है और जो मार्क्सवाद को ही मानव-समाज के उत्थान का एकमात्र साधन मानते हैं लेकिन मानव निर्मित परिस्थितियाँ उनके मार्ग में रोड़ा बनकर खड़ी हो जाती हैं। जमील अहमद, जो जीवन भर अपनी साम्यवादी विचारधारा के कारण धर्म और पूँजी का विरोध करता रहा, वह देश के विभाजन के उपरान्त अपने मजहब के कारण भारतवर्ष में अपने को अरक्षित महसूस करता है और इस प्रकार वह उसी मजहब के शिकंजे में फँस जाता है, जिसे वह रूस की भाँति अपने देश से बाहर निकालने का विचार करता था। वह जगतप्रकाश की आत्मीयता से भी आँख मूँद लेता है, धर्म के चक्कर में आकर। जमील के चरित्र द्वारा कथाकार यह स्पष्ट करना चाहता है कि अंग्रेजों द्वारा बोये गये साम्प्रदायिकता के बीज ने देश में इस तरह अपनी जड़ें जमा ली थीं कि जमील जैसे तत्वचिंतक भी अपने सिद्धान्तों से समझौता करने में हिचकते नहीं थे। इस प्रकार कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी ~~के~~ की कमजोरियों की ओर वर्मा जी ने इंगित किया है।

1- सीधीसच्ची बातें- पृ० ~~560~~ ~~546~~ 416

2- मन्मथनाथ गुप्त-'सफल युगान्तकारी उपन्यास-सीधी सच्ची बातें' प्रकाशन समाचार-फरवरी 1968, पृ० 17-18

'सीधी सच्ची बातें' में भारत की राजनीतिक स्थिति की पृष्ठभूमि के रूप में द्वितीय विश्वयुद्ध की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख भी कथाकार ने किया है। रूस पर जर्मनी का आक्रमण, जर्मनी और जापान की साठगाँठ, जापान द्वारा दक्षिण-पूर्वी एशिया पर विजय, जर्मन सेना का मास्को और लेनिनग्राड की ओर बढ़ना किन्तु रूस के शीतकाल के कारण जर्मनी को पीछे हटने के लिए विवश होना, मुसोलिनी की हत्या और हिटलर की पराजय के साथ-साथ जर्मनी और इटली की पराजय, अमेरिका द्वारा जापान के हिरोशिमा नगर पर निर्णयात्मक प्रहार के लिए एटमबम गिराना और अंत में जापान का पराजित होना, द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटेन का विजयी होना, किन्तु आर्थिक दृष्टि से एकदम पंगु हो जाना- आदि घटनाओं का यथास्थान उल्लेख वर्मा जी ने किया है। इन घटनाओं के उल्लेख के साथ प्रस्तुत उपन्यास के पात्रों के द्वारा विश्वयुद्ध की स्थितियों पर विस्तृत विचार-विमर्श भी किया गया है। 18वें परिच्छेद में तो उपन्यास के प्रमुख पात्र जगतप्रकाश को स्वयं युद्ध में भाग लेते हुए दिखाया गया है अत: इस सम्पूर्ण परिच्छेद में युद्धभूमि ष का सम्पूर्ण दृश्य वर्मा जी ने बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। युद्धभूमि में मारते-मरते समय एक व्यक्ति की मन:स्थिति क्या हुआ करती है - इस सम्पूर्ण स्थिति को कथाकार ने उपन्यास के पृष्ठों पर ~~जीवंत~~ जीवंत कर दिया है। इसके अतिरिक्त द्वितीय विश्वयुद्ध का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा था, विभिन्न मतावलम्बियों पर युद्ध की स्थिति की क्या प्रतिक्रियाएँ हुई थीं इसे भी वर्मा जी ने उपन्यास की मुख्य कथा के साथ गूँथकर एकाकार कर दिया है। वर्मा जी का विचार है कि द्वितीय विश्वयुद्ध साम्यवाद द्वारा तानाशाही के विरोध में किये गये प्रयत्नों के फलस्वरूप हुआ था, इसीलिए भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद के विरोधी होते हुए भी रूस के रक्षार्थ देश की राष्ट्रीय नीति के विरोध में ब्रिटिश सरकार की सहायता करने के पक्ष में थे। इसके विपरीत देश के कुछ उग्र राष्ट्रीयतावादी लोग जर्मनी के पक्षधर होकर आर्य रक्त की शक्ति का समर्थन करते थे। इन दोनों विचारधाराओं को 'देवली कान्सेन्ट्रेशन' के संघर्ष के माध्यम से वर्मा जी ने प्रस्तुत किया है। रामकिशोरसिंह कहता है,- 'दुनिया में सारे संघर्षों और समस्त अशांति का कारण है मत-विभिन्नता। जो सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है, सत्य है उसके साथ है। सत्य का रूप तो एक होता है। जर्मन जाति दुनिया को गुलाम नहीं बनाना चाहती, वह दुनिया की सभ्यता, संस्कृति और सम्पन्नता के विकास में दिशा-निर्देश करेगी और यह उचित ही है।'[1] किन्तु जगतप्रकाश हिटलर की साम्राज्यवादी नीति की आलोचना

1- सीधी सच्ची बातें-पृ० 350

करते हुए अपने विचार रखता है, -"यह सद्भावना से भरा दिशा-निर्देश नहीं है। यह घृणा से भरा नरसंहार और हत्याकाण्ड है, जिसका प्रतिनिधित्व हिटलर कर रहा है। जर्मनी और ब्रिटेन का युद्ध आदर्शों को लेकर नहीं हो रहा है, वह दो शोषणकर्ता और उत्पीड़कों का युद्ध है, दोनों ही पक्ष पशुता की भावना से भरे हुए हैं। दोनों ही पक्ष शोषण, गुलामी और उत्पीड़न के समर्थक हैं। इन दोनों को एक-दूसरे से लड़कर नष्ट हो जाना चाहिए, इन दो दानवी शक्तियों के विनाश के बाद ही दुनिया में समाजवाद की स्थापना सम्भव है।"[1]

द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी, जापान, इटली और फ्रांस आदि देशों की पराजय होती है और दीर्घकालीन युद्ध के कारण ब्रिटेन का आर्थिक ढाँचा एकदम लड़खड़ा जाता है। ब्रिटेन की कंज़र्वेटिव पार्टी की सरकार ने यह युद्ध छेड़ा था, अत: लोग कंज़र्वेटिव सरकार के दुश्मन बन गये थे इसीलिए ब्रिटेन में नई मजदूर सरकार का निर्माण होता है और उसकी प्रेरणा से भारत को स्वराज्य मिलता है - इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। यह सम्पूर्ण राजनीतिक पृष्ठभूमि 'सीधी सच्ची बातें' में चित्रित की गई है। कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन से लेकर गाँधी जी की हत्या तक जिन-जिन राजनीतिक घटनाओं का समावेश प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है, वह इस प्रकार है -

1- 7 मार्च 1939 से त्रिपुरी में कांग्रेस का बावनवाँ अधिवेश, 7,8,9 मार्च को ऑल इण्डिया कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक और 10,11,12 मार्च को कांग्रेस का खुला अधिवेशन; अध्यक्ष- सुभाषचन्द्र बोस; सुभाष बाबू द्वारा ब्रिटिश सरकार को छह महीने का अल्टीमेटम देने का प्रस्ताव, किन्तु वर्किंग कमेटी में गाँधी जी के अनुयायियों का बहुमत होने के कारण प्रस्ताव रद्द हो जाना।

2- रामगढ़ में कांग्रेस का अधिवेशन, 17-18 मार्च 1940 को ए०आई०सी०सी० की मीटिंग और 19-20 मार्च को खुला अधिवेशन; सुभाष के कांग्रेस से अलग हो जाने के कारण कांग्रेस में गाँधी जी के एकाधिपत्य की स्थिति।

3- अगस्त 1942 में 'क्विट इंडिया' मूवमेण्ट के तीन-चार महीने पहले ए०आई० सी०सी० की बैठक में राजगोपालाचारी द्वारा बटवारे की बात मान लेने का प्रस्ताव।

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 350-351

4- 24 जून सन् 1939, 7-8 अगस्त सन् ? तथा सुभाषचन्द्र की हवाई दुर्घटना से मृत्यु से पूर्व मूसलाधार वर्षा के बीच बम्बई में ए०आई०सी०सी० की बैठक बैठकें। 14 जुलाई को इलाहाबाद में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मिटिंग। 17-18 अप्रैल 1944 में जेल से छूटे हुए कांग्रेस नेताओं की बैठक।

5- 9 सितम्बर से गाँधी और जिन्ना की बातचीत।

6- 24 जून को वाइसराय द्वारा शिमला कांफ्रेंस का बुलाना- देश में राष्ट्रीय सरकार कायम करने के लिए, इस कांफ्रेंस में कांग्रेस, मुस्लिम अछूत व सिखों के प्रतिनिधि आमंत्रित तथा 14 जुलाई को शिमला कांफ्रेंस के असफल होने की सूचना।

7- लार्ड बेवल द्वारा देश में नए चुनावों की घोषणा।

8- 19 मई 1946 को बम्बई में नौसेना का विद्रोह।

9- 16 अगस्त को मिस्टर जिन्ना द्वारा मुस्लिम लीग के 'डाइरेक्ट ऐक्शन' का नारा।

10- 20 जनवरी 1947 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री द्वारा जून 1948 के पहले भारत को स्वतंत्र कर देने की घोषणा।

11- 5 जून को वाइसराय माउण्टबेटन द्वारा 15 अगस्त को भारत को स्वतंत्र कर देने की प्रेस-कांफ्रेंस में घोषणा।

12- 13 जनवरी 1948 को गाँधी जी द्वारा देश और विशेष रूप से दिल्ली की साम्प्रदायिक स्थिति सुधारने के लिए अनशन का प्रारम्भ और 18 जनवरी को अनशन की समाप्ति।

13- गाँधी जी की हत्या।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि वर्मा जी ने इन घटनाओं का उल्लेख करते समय घटनाओं की तिथि तो प्राय: दी है, किन्तु घटनाओं का सन् अधिकांश स्थलों पर नहीं दिया है। यद्यपि इन घटनाओं के आसपास की कथा से इनके सन् का थोड़ा, बहुत अनुमान लग जाता है तथापि सन् दिये जाने पर घटनाओं की विश्वसनीयता में वृद्धि की जा सकती थी।

'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में भी यत्र-तत्र स्वातंत्र्य-पूर्व देश की राजनीतिक स्थिति का उल्लेख वर्मा जी ने किया है। प्रथम विश्वयुद्ध, द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सैनिकों की भरती, बम्बई में कांग्रेस के अधिवेश में 'भारत छोड़ो' तथा 'करो या मरो' का प्रस्ताव प्रस्ताव, 1945 में नेताओं की जेलों से मुक्ति, 1946 में चुनाव, 1921 में असहयोग आन्दोलन

की असफलता, 1919 में महात्मा गाँधी का भारत के राजनीतिक क्षितिज पर उदय आदि घटनाओं का आकलन प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है, किन्तु उस समय की राजनीतिक स्थिति के चित्रण की अपेक्षा कथाकार का उद्देश्य तत्कालीन आर्थिक स्थिति को अंकित करने का अधिक रहा है। उपर्युक्त घटनाओं के संदर्भ में कथाकार ने स्पष्ट किया है कि इन राजनीतिक स्थितियों का देश की आर्थिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा था तथा पूँजीपतियों और राजनीतिक नेताओं ने इन परिस्थितियों का लाभ अपने स्वार्थ के लिए किस प्रकार उठाया था। इसके अतिरिक्त भारत के आधुनिक राजनीतिक जीवन की विकृतियों को व्यंग्यपूर्ण शैली में चित्रित करने की ओर वर्मा जी ने अधिक ध्यान दिया है। 'सीधी सच्ची बातें' में चित्रित राजनीति के क्रम में 'प्रश्न और मरीचिका' का स्थान है। 'प्रश्न और मरीचिका' का प्रारम्भ भारत के प्रथम स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त 1947 से और अंत 1963 में नेहरू जी की अस्वस्थता के पश्चात् होता है। 'सीधी सच्ची बातें' का कथानक जहाँ समाप्त होता है, वहीं से वर्मा जी ने प्रश्न और मरीचिका' के कथानक का प्रारम्भ किया है। जहाँ 'सीधीसच्ची बातें' में देश के बटवारे के लिए कथाकार का आक्रोश गाँधी, जी के प्रति व्यक्त हुआ है, वहाँ 'प्रश्न और मरीचिका' में लेखक की सहानुभूति गाँधी जी के प्रति दृष्टिगत होती है क्योंकि स्वतंत्रता के पश्चात् देश की सत्ता का सूत्र दूसरे नेताओं और व्यक्तियों के हाथ में आ जाता है और गाँधी जी की स्थिति मन्दिर के देवता जैसी हो जाती है जिसे समय-समय पर पूजा और सेवा तो मिलती है लेकिन इसके अतिरिक्त जीवन की गतिविधियों में उसका स्थान नगण्य सा होता है। 'सीधी सच्ची बातें' में वर्मा जी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि स्वतंत्रता के उपरान्त देश का नेतृत्व गाँधी जी के हाथ से खिसककर नेहरू जी के हाथ में आ गया था और वह भी गाँधी जी की ही इच्छा से। 'प्रश्न और मरीचिका' में 'नेहरू युग' की सम्पूर्ण राजनीति को यथार्थरूप में चित्रित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में नेहरू जी और उनके समकालीन अन्य नेताओं के चरित्र के सबल और दुर्बल पक्षों को बिल्कुल निष्पक्षता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

देश स्वतंत्र होता है और देश में शासन और व्यवस्था का उत्तरदायित्व मंत्रियों, नेताओं और सचिवों के कंधों पर आ जाता है। ये नेता और सचिव इस उत्तरदायित्व को किस रूप में ग्रहण करते हैं- यह सारी भूमिका उपन्यास के द्वितीय परिच्छेद में स्पष्ट हो जाती है।[1] देश के इन कर्णधारों की वाणी में देश के उज्ज्वल भविष्य की सुन्दर कल्पनाएँ

1- देखिए- प्रश्न और मरीचिका-पृ0 39 से 44

जन्म लेती हुई दिखाई पड़ती हैं, इन कल्पनाओं को साकार करने के लिए उच्च आदर्शों और पवित्र संकल्पों की शपथ ली जाती हैं किन्तु उन्हीं शब्दों के बीच कहीं से उनकी स्वार्थ-पूर्ण महत्वाकांक्षा और पदलोलुपता का भी संकेत मिल जाता है, जिसकी पुष्टि उनके बाद के कार्यों से हो जाती है। देश के सर्वोच्च नेता नेहरू जी भी इस महत्वाकांक्षा से अछूते नहीं रह पाते। युवक सदृश उत्साह और उमंग से युक्त नेहरू जी का व्यक्तित्व अजीब चुम्बकीय शक्ति से ओतप्रोत था, भारत की भोली तथा प्राय: अशिक्षित जनता ने इसी आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर नेहरू जी को देश का सर्वेसर्वा मान लिया था। नेहरू जी के शांति और अहिंसा के सिद्धान्त के भुलावे में जनता उनकी जय-जयकार में तल्लीन थी, परिणामस्वरूप नेहरू जी देश के चारित्रिक उत्थान के उत्तरदायित्व से उदासीन होकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी धाक जमाने की महत्वाकांक्षा से अनुप्रेरित होने लगे।[1] देश के आर्थिक और औद्योगिक विकास के लिए अनेक आकर्षक योजनाओं का श्रीगणेश हो रहा था- विदेशी पूँजी की सहायता से, किन्तु इसके पीछे भी नेहरू जी की अहम्मन्यता और बड़प्पन की प्रवृत्ति का आभास मिल जाता है। नेहरू जी देश का आर्थिक विकास करके उसे अमेरिका और रूस के समकक्ष दुनिया के तीसरे शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करके अपनी योग्यता और क्षमता की धाक जमाना चाहते थे। इसी प्रयत्न में भारत राजनीतिक दासता से मुक्ति पाकर विदेशों की आर्थिक गुलामी में जकड़ता जा रहा था।

जवाहरलाल नेहरू में तो केवल एक महत्वाकांक्षा थी - स्वयं को महान् और आदर्श नेता के रूप में प्रतिष्ठित करने की; और इसके लिए उन्होंने कुछ भयंकर राजनीतिक त्रुटियों के उपरांत भी देश को प्रगति के पथ पर ले जाने के लिए कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी। लेकिन देश में ऐसे नेताओं की कमी नहीं थी जो मात्र अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कोई भी अनैतिक साधन का उपयोग करने में संकोच नहीं करते थे। 'प्रश्न और मरीचिका' में रूपा शर्मा इनकी प्रतिनिधि बनकर प्रस्तुत हुई हैं। लल्लू सिंह, विद्यानाथ और बिंदेसरी देवी के चरित्र भी भारतीय राजनीतिक नेताओं के चित्र को पर्याप्त यथार्थ रूप में प्रति-बिम्बित कर देते हैं। शिवलोचन शर्मा के रूप में वर्मा जी ने गाँधी युगीन नेताओं की दुर्गति का बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है। शिवलोचन शर्मा गाँधी जी के सच्चे अनुयायी और त्यागी नेता हैं किन्तु सत्ता की भूख ने उन्हें इतना असंयमी और अविवेकी बना दिया है कि वह पद

1- प्रश्न और मरीचिका - पृ0 135

के लिए पागल-से दौड़ते हैं। अपनी जमीन-जायदाद भी बेचकर वह पद पाना चाहते हैं और इस दौड़ में पराजित होने पर उनका मन अपार कुंठा और निराशा से भर उठता है। इस मर्मान्तक पीड़ा के कारण उनका जीवन भी नरकतुल्य बन जाता है। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में नेताओं की इसी सत्ता-प्रियता की अभिव्यक्ति वर्मा जी ने त्यागपूर्ण झम्मनलाल सत्याग्रही के चरित्र-चित्रण द्वारा की है - "एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति का कुछ ऐसा प्रताप की त्यागमूर्ति इक्यासी वर्ष की अवस्था में भी समस्त प्रदेश का भार अपने कन्धों पर लादे हुए थे। उनकी बत्तीसी जर्मनी में बनी थी- उन्हें देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि उनके दाँत नकली हैं। दोनों कानों में बटन लगे थे जिनकी सहायता से वह गरीब का सुख-दुख आसानी से सुन सकते थे।"[1] उपन्यासकार के इन शब्दों में उन सत्ता-लोलुप नेताओं के प्रति तीव्र व्यंग्य व्यक्त हुआ है जो वार्द्धक्य की अनेक शारीरिक व्याधियों से त्रस्त होकर भी अपनी कुर्सी छोड़ना नहीं चाहते।

देश के स्वतंत्र होने पर भारतीय नेताओं ने देश के प्रशासन के लिए लोकतांत्रिक पद्धति का चयन किया। लोकतंत्र में चुनाव का महत्व असंदिग्ध है। वर्मा जी ने अपने परवर्ती दोनों उपन्यासों में चुनाव और उसकी विशेषताओं पर यथोचित प्रकाश डाला है। भारतीय जनता के प्रतिनिधि अपने चुनाव के लिए किन-किन हथकण्डों को उपयोग में लाते हैं, चुनावों के समय सामान्य जनता की मनोवृत्ति क्या होती है तथा चुनाव का लाभ किन लोगों को मिलता है - इन सभी प्रश्नों के उत्तर 'प्रश्न और मरीचिका' तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में यथास्थान मिल जाते हैं। 'प्रश्न और मरीचिका' में रूपा शर्मा और विद्यानाथ तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में जबरसिंह व रामलोचन के चुनाव-संघर्ष से भारतीय-चुनाव-अभियानों का काफी स्पष्ट चित्र पाठक के चित्त पर प्रकाशित हो जाता है। 'प्रश्न और मरीचिका' में चुनाव के विजेता विद्यानाथ के मुख से चुनाव-सम्बंधी विचार अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत नहीं होते - 'यह मतदान करने वाली जनता बेदिमाग, अपढ़ और भुलावों में भटकने वाले लोगों का एक समुदाय भर है। ये जितने चुनाव हैं, ये सिद्धान्तों पर नहीं लड़े जाते। बेतहाशा रूपया खर्च होता है चुनावों पर- चाँदी का जूता चलता है और असली जूता भी चलता है। वोटों को खरीदने के लिए शराब पिलाई जाती है, झूठे नारों और झूठे वादों पर लोगों को गुमराह किया जाता है। कभी-कभी लाठी और जूते का भी सहारा लेना होता है। मैंने भी यह सब किया है, तब कहीं जाकर मैंने चुनाव जीता है।'[2] चुनाव में

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 150-51

2- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 513

हमेशा वही विजयी होता है, जिसके पास धन और बल होता है- यह बताने के साथ वर्मा जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि विधायक सदैव पैसों के सहारे ही मतदाता को नहीं खरीद सकते, कभी-कभी उन्हें मतदाता का विश्वास भी प्राप्त करना पड़ता है। शिवलोचन शर्मा कहते हैं -'यह चुनाव का मनोविज्ञान भी कुछ अजीब है ------ जब तक मतदाता को यह विश्वास नहीं हो जाता कि विधायक उसके लिए या उसके क्षेत्र के लिए उपयोगी है तब तक वह फिर से अपना मत नहीं देगा।'[1] इस प्रकार मतदाताओं के विषय में वर्मा जी के विचार किन्हीं अंशों तक पर्याप्त उचित प्रतीत होते हैं। चुनाव के समय प्रत्येक मतदाता ऐसे व्यक्ति को ही मत देना चाहता है जो उसके स्वार्थ की पूर्ति करता दिखलाई पड़ता है, उसमें देश, मानव और समाज के हित को सोचने का विवेक प्राय: कम ही दिखलाई पड़ता है। इसी सत्य की पुष्टि विद्यानाथ के कथन से होती है -'मतदाता तो जानवर होता है- जानवर। वह सोचता समझता कब है ? कुछ अभिजात वर्गों को छोड़कर अधिकांश आदमी अपढ़ हैं और बुद्धिहीन हैं। फिर हमारे समाज का हरेक आदमी चाहे वह ऊँचा हो या नीचा हो अपने छोटे-छोटे स्वार्थों में इस बुरी तरह उलझा हुआ है कि देशहित,समाज-हित और मानवहित को वह देख ही नहीं पाता।'[2]

जहाँ तक चुनावों द्वारा लाभान्वित होने की बात है, चुनाव के विजेता को तो पद और प्रतिष्ठा का लाभ मिलता ही है ; जिन व्यक्तियों की सहायता से यह चुनाव जीता जाता है उन्हें भी विधायकों और नेताओं की सिफारिश से लाभ मिलता है। साथ ही एक और वर्ग है जो इन चुनावों के कारण महत्ता प्राप्त करता है, वह है अफसर वर्ग। किन्तु चुनाव जिसके हित और कल्याण के लिए होते हैं , वह झूठे आश्वासनों की मरीचिका में इधर-उधर भटकता ही रह जाता है- अर्थात जन-जीवन के दुखदर्द इन चुनावों के बाद एकदम पीछे छूट जाते हैं। इस सम्बंध में जनार्दनसिंह का कथन द्रष्टव्य है -'यह लोग (मंत्री) चुनाव लड़कर आते हैं। ये चुनाव मनुष्य के चरित्र-बल पर नहीं जीते जाते , ये चुनाव जीते जाते हैं जूतों के बल पर। चाहे वे चाँदी के जूते हैं, चाहे वह असली नाल लगे चमड़े के जूते हों। चुनाव जीतने के लिए वोट या तो रुपयों से खरीदकर प्राप्त किए जाते हैं या फिर गुण्डों

1- प्रश्न और मरीचिका- पृष्ठ-403

2- ,, ,, पृष्ठ-394

का आतंक जमाकर प्राप्त किए जाते हैं। हरेक कान्सटीटुएन्सी के प्रभावशाली लोगों का सहारा लेना पड़ता है। जो तुम्हारे समर्थक हैं, वह तुम्हारे आदमी हैं। ये मुखिया, चौधरी, महाजन- ये या तो स्वयं गुण्डे होते हैं या गुण्डों का एक दल रखते हैं अपने साथ। तो जब यह गुण्डे कभी फँसते हैं तो क्षेत्र के प्रमुख लोग विधायक के पास दौड़ते हैं कि इन्हें कानून की गिरफ्त से मुक्त करा दें और इन लोगों को कानून की गिरफ्त से मुक्त कराया जा सकता है। इस नौकरशाही द्वारा। तो जब तुम स्वयं अपराध के समर्थक बन जाते हो तब तुम अपराध किस तरह रोक सकोगे? किसी सरकारी कर्मचारी से एक अनुचित कार्य कराने के लिए तुम्हें उसके दस अनुचित कामों की छूट देनी पड़ेगी।"[1]

<u>सरकारी अफसर</u> :- निश्चय ही उपन्यासकार की तीव्र दृष्टि से देश में व्याप्त भ्रष्टाचार से सम्बद्ध तत्व बचकर निकल नहीं पाये हैं। नेताओं और मंत्रियों की आचारहीनता का सर्वाधिक दुरुपयोग करनेवालों में नौकरशाही के उच्चतर ~~वर्ग~~ सरकारी अफसर प्रमुख हैं। देश की सारी राजनीति और व्यवस्था इन्हीं अफसरों के दिशा-निर्देश पर संचालित होती है और इसी कारण देश के ~~बड़े~~-बड़े से -बड़े उद्योगपति से लेकर सामान्य जनता तक, सबको इनकी कृपा पर निर्भर करना पड़ता है, तथा इनकी हर प्रकार की सेवा में उपस्थित रहना पड़ता है। इनकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के लिए बड़-बड़े व्यापारियों को इन सरकारी अधिकारियों की आर्थिक सहायता करनी पड़ती है अर्थात् बड़ी मोटी रिश्वत देनी पड़ती है, उनके सम्बंधियों को अपनी कंपनियों में काफी ऊँची तनख्वाह पर नौकरियाँ देनी पड़ती हैं। इसी बात को दृष्टि में रखकर उदयराज के पिता, जो उपन्यास में भारत सरकार के उच्चपदस्थ अधिकारी के रूप में चित्रित हुए हैं, कहते हैं -"दुनिया में ऊँची तनख्वाह और अधिक पैसा ही तो सब-कुछ नहीं है। जो चीज़ उससे भी अधिक महत्व की है वह है पद, अधिकार और सम्मान। इन बड़ी-बड़ी कम्पनियों के मालिक, ये पूँजीपति, ये सब हमारी खुशामद करते हैं।"[2] इन अधिकारियों की अहम्मन्यता की पर्याप्त झलक इस कथन से प्राप्त हो जाती है।

इतना ही नहीं, इन सचिवों के प्रभाव के कारण देश-विदेश की बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण फर्म और कम्पनियों में इनके सम्बंधी बड़ी ऊँची तनख्वाहों पर नियुक्त हो जाते हैं और फिर भ्रष्टाचार का चक्र जिस तेजी से घूमता है वह आज किसी से छिपा

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 288

2- ,, ,, पृ० 143

नहीं है। तनख्वाह की विपुल धनराशि के सहारे विलासिता का जीवन व्यतीत करना, रिश्वत और प्रभाव से जमीन जायदाद इकट्ठी करना इन लोगों के लिए बाएँ हाथ का खेल हो जाता है। 'प्रश्न और मरीचिका' में जयराज उपाध्याय, विश्वनाथ मदान और मिस्टर चंदानी के चरित्र द्वारा वर्माजी ने इन समस्त स्थितियों को चित्रित किया है। विश्वनाथ मदान का पुत्र प्रेमनाथ मदान, जो अपने पिता के प्रभाव से ही विश्वविख्यात कंपनी का जनरल मैनेजर बन जाता है, नौकरशाही से लाभान्वित होनेवाले लोगों का प्रतीक बनकर आया है। उसकी विलासिता, चरित्रहीनता और अभिमान ऐसे लोगों के चरित्र को पूर्णरूपेण उजागर कर देता है।

वर्माजी के उपन्यासों में देश की जिस विशाल राजनीतिक पृष्ठभूमि को स्थान दिया गया है उनमें तीन प्रमुख राजनीतिक विचारधाराएँ मुखरित हुई हैं :- सामन्तवाद, पूँजीवाद और गाँधीवाद। इन्हें जिस रूप में वर्मा जी ने प्रस्तुत किया है उस पर विचार कर लेना भी यहाँ समुचित प्रतीत होता है।

सामन्तवाद :- सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत आनेवाले जमींदारों, ताल्लुकेदारों तथा राजाओं को वर्मा जी के उपन्यासों में पर्याप्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। 'पतन' से 'प्रश्न और मरीचिका' तक दो एक उपन्यासों को छोड़कर लगभग सभी उपन्यासों में इस प्रकार के पात्र दृष्टिगत हो जाते हैं और उन्हें कुछ इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि वह अपनी एक स्पष्ट छाप पाठक के मन पर छोड़ जाते हैं।

नवाब वाजिदअली शाह, राजा श्यामसिंह(पतन), बीजगुप्त(चित्रलेखा), अजित (तीनवर्ष), रामनाथ तिवारी(टेढ़े मेढ़े रास्ते), वीरेश्वर प्रतापसिंह (अपने खिलौने), गजराज सिंह, रिपुदमनसिंह, राणा प्रतापजंगशमशेर, राजा धरनीधर(भूले बिसरे चित्र), राजा जीवनराम और रानीश्यामला (वह फिर नहीं आई) रानी मानकुमारी, मेजर नाहरसिंह(सामर्थ्य और सीमा) मेजर यशवन्त सिंह(रेखा) राजा गम्भीरसिंह, पृथ्वीपालसिंह, राव चन्द्रभूषण सिंह, राजा रामसमुझ पाण्डे आदि (सबहिं नचावत राम गोसाईं) इसी प्रकार के पात्र हैं जिनके माध्यम से वर्मा जी ने सामन्तशाही जीवन को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। भारत में अंग्रेजों के आगमन के पूर्व ही सामन्तवाद पतनोन्मुख हो चुका था। नवाब वाजिदअली शाह जैसे घोर विलासी और प्रमादी राजाओं के कारण भारत को सैकड़ों वर्षों तक पराधीनता की शृंखलाओं से आबद्ध रहना पड़ा था- यह सत्य किसी से छिपा नहीं है। 'पतन' में वर्मा जी ने इसी तथ्य को अपने उपन्यास का आधार बनाया है।

अंग्रेजों के भारत पर आधिपत्य के पश्चात् भी राजाओं, जमींदारों और ताल्लुकेदारों की आँखें नहीं खुलीं, वे अपनी अकर्मण्यता और विलासिता में पूर्ववत् डूबे रहे। अंग्रेजों द्वारा उन्हें अपनी विलासिता के लिए और प्रेरणा मिलती थी क्योंकि इससे अंग्रेज प्रशासकों को दोहरा लाभ होता था। पहला, इनके द्वारा भोगविलास की सामग्री के बदले लाखों रुपयों की सम्पत्ति ब्रिटेन पहुँचा करती थी। डाबसन जमींदारों की इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है -" ये जमींदार। इनका अधिकांश रुपया विलायत में जाता है, मोटरों की कीमत में, सिगरेट में, शराब में, विलायती कपड़ों में और न जाने भोग-विलास की कितनी चीजों में। आप जरा गौर करें--- जितने राजे-महाराजे, ताल्लुकेदार---रईस विलायत जाते हैं, वहाँ कितना खर्च करके लौटते हैं।"[1] दूसरे, इनकी पीठ ठोंककर अंग्रेज ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं से मुक्त हो जाते थे क्योंकि ये जमींदार और राजे महाराजे देश के शोषण में अंग्रेजों का हाथ बटाते थे। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा' और 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में राजाओं और जमींदारों की राजसी आन-बान के चित्र पर्याप्त मात्रा में देखने को मिल जाते हैं। वर्मा जी ने इनकी शानशौकत के चित्र तो बड़ी तन्मयता से प्रस्तुत किए हैं किन्तु जमींदारों के अत्याचार और उत्पीड़न के संकेत ही इन उपन्यासों में मिलते हैं।

पण्डित रामनाथ तिवारी को वर्मा जी ने एक रौबदार किन्तु सहृदय ताल्लुकेदार के रूप में चित्रित किया है, फिर भी ग्रीष्म ऋतु में उनके आवास का दृश्य दर्शनीय है -: "पण्डित रामनाथ तिवारी अपने कमरे में सोए हुए थे। दरवाजों पर खस की टट्टियाँ लगी थीं जिन पर नौकर हर आध घण्टे बाद पानी छिड़क देता था। पंखा चल रहा था।

पंखा-कुली बाहर बरामदे में बैठा हुआ लू के थपेड़े खा रहा था और पंखा खींच रहा था।"[2]

यही पंखा -कुली जब सो जाता है तो उसे उठाने के लिए तिवारी जी जिस शब्दावली का प्रयोग करते हैं उसी से जमींदारों की निर्दयता की कुछ झलक मिल जाती है-

" अबे ओ कलुआ के बच्चे-सोने लगा। साले-- मारे हंटरों के खाल उधेड़ दूँगा।"[3]

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 43

2- ,, पृ० 1

3- ,, पृ० 2

इसी प्रकार 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के तीसरे परिच्छेद में जमींदारों और उनके कारिंदों तथा ग्रामीण व जनता के बीच तनावपूर्ण सम्बंधों को विस्तार से चित्रित किया गया है। गाँव की भोली-भाली जनता को हंटरों से पिटवाना, उनके मकान जलवा देना, उनकी मिल्कियत जब्त करवा लेना- ये सब बातें जमींदारों के लिए नगण्य सी थीं। जमींदारों की मुख्य विशेषता यह थी कि वह स्वयं ग्रामीणों की समस्याओं से बचने के लिए शहरों में रहते थे और उनके कारिन्दे गाँव वालों को परेशान करते थे (सीधी सच्ची बातें-पृ० 102, टेढ़े मेढ़े रास्ते के रामनाथ तिवारी भी अपना ताल्लुका छोड़ प्राय: उन्नाव में रहते थे और उनके मैनेजर और कारिन्दे बानापुर की जनता को परेशान करते थे) रामनाथ तिवारी तो अपेक्षाकृत उदार और समझदार जमींदार के रूप में चित्रित किये गये हैं किन्तु अपनी अहम्मन्यता और सत्ता के मद में डूबे आलसी और निकम्मे जमींदारों और राजाओं को अपनी अकर्मण्यता के कारण ही अपनी सत्ता और अस्तित्व से हाथ धोना पड़ा था -इसे प्रत्येक विवेकी राजवंशी भी भली प्रकार समझता था। मेजर नाहरसिंह के शब्दों में यही व्यथा व्यक्त हुई है -'जमींदार को मिटना ही था क्योंकि वह निकम्मा हो गया था, ऐश, आराम में डूबकर उसने अपने को तबाह कर लिया था।'[1]

अंग्रेज जमींदारों और ताल्लुकदारों की सत्ता के प्रभाव और मूर्खता का दोहरा फायदा उठाना चाहते थे। एक ओर तो वह इन जमींदारों के माध्यम से गाँवों में राष्ट्रीय चेतना को दबाए रखना चाहते थे, दूसरे, उन्हें कांग्रेसियों के विरुद्ध उत्तेजित करके वह स्वतंत्रता-संग्राम को दबा देना चाहते थे। पण्डित रामनाथ तिवारी की भाँति ऊँच-नीच समझने वाले जमींदार बहुत कम थे, अधिकांश ऐसे थे जो अशिक्षित और मदान्ध थे। तिवारी जी को अपनी शक्ति का आभास था इसीलिए उन्होंने बड़े स्वाभिमान के साथ डाबसन को खरी खोटी सुना दी थी -'यह याद रखिएगा कि आप उस सरकार की नौकरी कर रहे हैं जो जमींदारों के बल पर कायम है।'[2] फिर भी तिवारी जी को अपने वर्ग की वास्तविकता का ज्ञान भी था-'यह एक विडम्बना ही है कि हम जमींदार और ताल्लुकेदार अपढ़ और कायर होने के कारण अपने स्थान और अपनी महत्ता को गँवा बैठे हैं।'[3]

अधिकांश जमींदारों और ताल्लुकेदारों की स्थिति यह थी कि वह अंग्रेजों की

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 209

2- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 41

3- ,, ,, पृ० 41

खुशामद करके ऊँची पदवियाँ पाना चाहते थे, अंग्रेजों के स्वार्थ से सम्बंधित बातें कहकर अंग्रेज सरकार की नीतियों का समर्थन करके उनके कृपापात्र बने रहना चाहते थे। रामसमुझ पाण्डे के व्याख्यान से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि अंग्रेजों के शासन काल की अंतिम अवस्था में, जबकि सम्पूर्ण राष्ट्र एकजुट होकर विदेशी सत्ता से मुक्त होने में प्राणपण से लगा था, इन जमींदारों का व्यवहार कितना देशघाती और अव्यावहारिक था। रामसमुझ पाण्डे का व्याख्यान द्रष्टव्य है -'ताल्लुक़दारों और जमींदारों को यह चाहिए कि वे इस आन्दोलन को गाँवों में न घुसने दें, रही शहरों की बात, वहाँ व्यापारियों, क्लर्कों और कुलियों का जमाव है जिन्हें अपनी रोज़ी कमाने से ही फुरसत नहीं मिलती, तो वह आन्दोलन खुद-ब-खुद मर जायगा।'[1]

इन्हीं जमींदारों से अपना स्वार्थ समाप्त हो जाने पर अंग्रेज शासकों ने, सन् 1946 में युद्ध की समाप्ति के पशचत् नए चुनाव होने पर, इन्हें बलि का बकरा बना दिया। 'इस चुनाव में कांग्रेस से मोरचा लेने के लिए' युक्तप्रान्त के गवर्नर ने प्रान्त में जमींदार और ताल्लुक़दारों की एक पार्टी संगठित करवाई और इस चुनाव में न जाने कितने जमींदारों को अपनी सम्पत्ति का सत्यानाश कर देना पड़ा। चुनाव में पानी की तरह रुपया बरबाद करके उन्हें अपनी प्रतिष्ठा से भी हाथ धोना पड़ा। इस तथ्य का वर्मा जी ने अनेक स्थलों पर उपयोग किया है।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में स्पष्ट कर दिया है कि कुछ कुलीन और विवेकशील जमींदारों को छोड़कर अधिकांशतः इस वर्ग में झूठी अहम्मन्यता अकर्मण्यता, विलासप्रियता का बोलबाला था। इन्होंने देश की गरीब जनता की उपेक्षा करके और विदेशी सत्ता की खुशामद करके अपनी महत्ता गँवा दी। इनकी रही-सही प्रतिष्ठा उस समय नष्ट हो गयी जब सन् 1950 मेंजमींदारी उन्मूलन बिल पास हुआ। इस बिल के आने के पश्चात् जमींदारों की स्थिति का अत्यंत मार्मिक चित्र वर्मा जी ने प्रस्तुत किया है -

'घर की हालत अब बहुत बिगड़ गयी थी, नौकर-चाकर बरख़ास्त कर दिये गये थे, दोनों मोटर कारें बेच दी गईं, घोड़े और मवेशी बेचे गए और इस तरह किसी तरह घर का खर्च चलने लगा। ताल्लुक़ा के बदले के कुछ सरकारी बांड, जिनका भुगतान पचीस साल

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 114

2- ,, ,, पृ० 89, 122, 23

बाद होना था, उन्हें आधे -परदे दामों पर बेचकर क़र्ज़ चुकाया गया ।`[1]

जमींदार और राजा-उमराव तो चले गये, किन्तु शोषण का चक्र चलता ही रहा, अमीर-गरीब का अंतर नहीं मिट सका । मात्र शक्ति का केन्द्र परिवर्तित हो गया । देश के औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप आर्थिक सत्ता पूँजीपतियों के हाथ आ गयी । इस परिवर्तन के भोक्ता नाहरसिंह का कथन द्रष्टव्य है - `अमीरी और गरीबी कायम रहेगी । शक्ति का केन्द्र बदल गया है । आज शक्ति का केन्द्र उत्पादन और व्यापार में है, रचनात्मक मस्तिष्क में है । बुद्धि जिसके पास है वही शक्तिशाली है, वही सम्पन्न है, वही अमीर है । ऊँचा-नीचा बराबर बना रहेगा, जमींदार मिट गया तो क्या ,बनिया तो तेजी से बढ़ रहा है ।`[2]

`बनिया ` शब्द से वर्मा जी का तात्पर्य पूँजीपति से प्रतीत होता है और उपर्युक्त कथन से वर्मा जी की किंचित् सहानुभूति सामंतवाद के प्रति परिलक्षित होती है जबकि वे `बनिया ` शब्द का प्रयोग करते समय तिरस्कार का भाव दृष्टिगत होता है । पहले हम कह चुके हैं कि वर्माजी ने जमींदारों के शोषण का वर्णन करते समय विशेष रुचि नहीं ली है और जमींदार पात्रों को जिस रूप में चित्रित किया है उससे उनकी अच्छाइयों और बुराइयों दोनों का उद्घाटन होता गया है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस वर्ग के पतन से उन्हें सहानुभूति अवश्य रही है । क्योंकि जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् भी देश की गरीब जनता को शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति नहीं मिल सकी । जिस आदर्श समाज की स्थापना के लिए इस वर्ग को समाप्त किया गया था वह मात्र कल्पना लोक का चित्र बनकर रह गया और जनता पूँजीवाद के कोल्हू में ऐसे जोत दी गई कि उसकी यात्रा का अंत ही नहीं आ सका ।

<u>पूँजीवाद</u> :- आज भारतवर्ष में पूँजीवाद जिस रूप में प्रसरित है उसके अनुसार इस देश की राजनीति और समाज में पूँजीवाद का महत्व अनुपेक्ष्य है । संभवत: इसी कारण वर्मा जी भी इस बहुचर्चित व्यवस्था की अवहेलना नहीं कर सके, उन्होंने भारत में पूँजीवाद के विकास और प्रभाव की अत्यंत तार्किक रीति से चर्चा की है । विश्व के अन्य देशों की भाँति भारत में भी पूँजीवाद का जन्म औद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप हुआ - इस तथ्य को स्वीकार करते हुए

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ0 137

2- सामर्थ्य और सीमा- पृ0 209

भी वर्मा जी ने एक दूसरे पहलू पर भी प्रकाश डाला है।`सीधी सच्ची बातें` में जगतप्रकाश और जमील अहमद दो चरित्र हैं। उनके पारस्परिक वार्तालाप से ऐसा ~~छो~~ प्रतीत होता है मानो वे एक ही व्यक्ति के अन्तर्मन में उठते हुए विभिन्न ~~ब~~ विचार हैं जिन्हें कुशल कथा-शिल्पी ने दो विभिन्न पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। पूँजीवाद के विकास के सम्बंध में इन दोनों के विचार क्रमशः द्रष्टव्य हैं - `यह पूँजीवाद मशीन-युग की उपज है, मशीन युग के पहले यह पूँजीवाद था ही नहीं। प्राचीनकाल में उत्पादकों का एक वर्ग था, वितरकों का दूसरा वर्ग था, उत्पादकों के वर्ग से सर्वथा भिन्न। किसान, जुलाहे, बढ़ई, लुहार, कुम्हार- न जाने कितने वर्ग तरह-तरह के उत्पादन करते थे। और उन उत्पादनों का वितरण करनेवाला दूसरा वर्ग था- व्यापारी वर्ग। यह व्यापारी वर्ग अपना पारिश्रमिक या मुनाफा लेकर वितरण करता था। इस वितरण के कार्य में वह न जाने कितनी ~~जो~~ जोखिमें उठाता था। जहाजों पर समुद्र पार व्यापार करने के लिए वह तूफानों और जलदस्युओं द्वारा प्राण गँवाने का खतरा उठाता था, माल के चोरी हो जाने या नष्ट हो जाने का वह घाटा बर्दाश्त करता था। और इस प्रकार समाज को सुव्यवस्थित, सम्पन्न और समृद्ध बनाता था। हमारे धर्मशास्त्र का वैश्य उस परम्परा का प्रतीक है। लेकिन मशीन-युग आने के बाद सामाजिक व्यवस्था ही बदल गयी। अब उत्पादक मनुष्य नहीं रह गया, अब उत्पादक मशीन हो गई है। मनुष्य इस मशीन का गुलाम बन गया है। जिसके पास पूँजी थी उसने बड़ी-बड़ी मिलें खड़ी कीं, उन मिलों की मशीनों को चलाने के लिए उसने मज़दूर-नौकर रखे। और नतीजा यह हुआ कि उत्पादकों का वर्ग ~~मिल~~ मिटने लगा। इस मशीन-युग में उत्पादन स्वयं पूँजी का गुलाम बन गया। और इसके परिणामस्वरूप पूँजीवाद का जन्म हुआ। आज मिल्कियत व्यक्ति की नहीं है, पूँजी की है।`[1] वर्मा जी ने जगतप्रकाश के माध्यम से बड़ी सुविचारित ~~व~~ रीति से पूँजीवाद के विकास का प्रस्तुतीकरण किया है, किन्तु उसका उत्तर भी कम प्रभावशाली नहीं है। जमील अहमद कहता है -`यह पूँजी! बिना उस आदमी के, जिसके पास पूँजी है, पूँजी का कोई मतलब नहीं है। जहाँ आदमी की मेहनत का मुनाफा न हो, मुनाफा पूँजी का हो, वहीं पूँजीवाद आ जाता है।--------- यह पूँजी, यह हमेशा से बनिये की बपौती रही है। व्यापार के लिए पूँजी चाहिए, और यह पूँजी खुद-ब-खुद सूद-दर-सूद में रुपया पैदा करती है, बिना इन्सान की मेहनत के।--- बरखुरदार, बुरा न मानना, यह तुम्हारा हिन्दू धर्म ही पूँजीवाद का धर्म है जहाँ ब्याज धर्म और कानून की रू से जायज़ है। इस्लाम में सूद हराम कहा गया है। ~~हजारों साल की~~

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 120-121

हजारों साल की परम्परा लिए हुए यह हिन्दू धर्म पूंजीवाद का सबसे बड़ा गढ़ है। यहाँ महाजनों और श्रेष्ठियों के हाथ में ताकत रही है, वे लोग बड़े-बड़े राजाओं को कर्ज़ देते थे, ठीक उसी तरह जिस तरह यहूदी लोग मध्य-युग में यूरोप के बादशाहों को कर्ज़ देते थे।"[1]

इस तथ्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि प्राचीन भारत में 'पूँजी' के स्वामी महाजनों और श्रेष्ठियों का महत्वपूर्ण स्थान था, किन्तु सामन्तकालीन भारत में आधिपत्य राजाओं और सम्राटों का ही था क्योंकि उनके पास शक्ति थी, युद्ध में लड़ने का कौशल था और उन श्रेष्ठियों को भी संरक्षण प्रदान करने की क्षमता थी, किन्तु आधुनिक भारत में औद्योगिक क्रांति के आगमन के पश्चात् भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पूँजीपतियों के समर्थन से जो स्थिति उत्पन्न हुई उससे भारत में पूँजीवाद के पैर संभवत: हमेशा के लिए जम गये। देश में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप पूँजीपतियों का व्यापार बढ़ने लगा था किन्तु देश पर ब्रिटिश सत्ता के कारण उन्हें बाजार में विदेशी माल की प्रतिद्वंदिता करनी पड़ती थी, इसलिए देश के व्यापारी ब्रिटिश सत्ता से लड़ने वाली मुख्य राजनीतिक पार्टी कांग्रेस के समर्थक बन गये और मुक्त हस्त से कांग्रेस को आर्थिक सहायता देने लगे। कांग्रेस का स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी बहिष्कार का नारा भी उनके व्यापार के हक में पड़ता था। पूँजीपतियों के इसी रवैये को व्यक्त करता हुआ लक्ष्मीचन्द कहता है - "अगर स्वदेशी की भावना लोगों में नहीं जागती तो देश के उद्योग-धन्धों का पनपना असम्भव हो जायगा। हमारे देश में तो उद्योग-धन्धों की शुरूआत है और शुरूआत में हम विदेशों का मुकाबला नहीं कर सकते। अगर देश का भावनात्मक सहयोग हम लोगों को प्राप्त हो जाय तो हम उद्योगपति देश को धीरे-धीरे आत्मनिर्भर बना सकते हैं। लोग मोटे-मोटे कपड़े पहनें, लेकिन स्वदेशी ही खरीदें तो धीरे-धीरे और अधिक मिलें खुलने लगेंगी, देश में, और हम अच्छे से-अच्छे महीन कपड़े बनाने लगेंगे। असहयोग का यह स्वदेशी आन्दोलन तो हमारे हक में पड़ता है।"[2]

दूसरी ओर कांग्रेस को अपना आन्दोलन चलाने के लिए रुपये की आवश्यकता थी- और यह रुपया कांग्रेस पार्टी को देश के पूँजीपतियों से ही मिल सकता था। कांग्रेस को रुपया देने में पूँजीपतियों का स्वार्थ किस प्रकार सिद्ध होता था इसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है। ज्ञानप्रकाश का कथन इस स्थिति को पूर्णतया स्पष्ट कर देता है -"हमारा

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 121

2- भूले बिसरे चित्र- पृ० 490

आन्दोलन चलाने के लिए रुपया चाहिए और यह रुपया हमें देश के पूँजीपति से ही मिल सकता है, क्योंकि अंग्रेजों की हुकूमत ब्रिटिश पूँजीवाद की हुकूमत है। हिन्दुस्तान से तिजारत करके तथा हिन्दुस्तान में अपना माल बेचकर ही ब्रिटेन हिन्दुस्तान का शोषण करता है। तो इस ब्रिटिश पूँजीवाद का सबसे बड़ा और सक्रिय शत्रु अगर कोई हो सकता है तो वह हिन्दुस्तानी पूँजीपति ही हैं।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि देश के पूँजीपति अपनी हित-साधना के लिए ही स्वतंत्रता सेनानी कांग्रेसियों को चन्दे के रूप में आर्थिक सहायता पहुँचा रहे थे किन्तु इनकी आर्थिक सहायता ने कांग्रेसी नेताओं पर अपना ऐसा प्रभाव जमा लिया था कि उन्हें गाँधी जी जैसे त्यागी पुरुष का भी प्रेम और विश्वास प्राप्त हो गया। जमील अहमद के कथन से इस बात की पुष्टि हो जाती है -"और सेठ चिमनलाल को - सेठ चिमनलाल को ही नहीं हिन्दुस्तान के सभी सेठों को महात्मा गाँधी की सरपरस्ती हासिल है। महात्मा गाँधी सरमाएदारों को अपने अपने साथ लेकर ही तो अंग्रेजों से लड़ रहे हैं।"[2]

यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि कांग्रेसी नेताओं द्वारा पूँजीपतियों का सहयोग लेना, मात्र उनकी विवशता थी, इससे उनकी नीति पर 'पूँजीवाद समर्थक' होने का आरोप नहीं लगाया जा सकता किन्तु कालान्तर में पूँजीवाद ने देश के अर्थतंत्र और राजतंत्र को अपने चंगुल में जिस तरह समेट लिया वह अपने आप में एक दुःखद विषय है।

स्वतंत्रता-संग्राम के समय देश को पूँजीपति की 'पूँजी' की आवश्यकता थी और स्वतंत्रता के पश्चात् भी देश के विकास के लिए भारत सरकार को पूँजीपतियों की 'पूँजी' का मुँह ताकना पड़ा। परिणामस्वरूप पूँजीपति और नेताओं की साठ-गाँठ बढ़ती ही गयी। व्यापारी और पूँजीपति अपनी पूँजी के बल पर जनता का शोषण करते हैं किन्तु सरकार उनकी समस्त अनियमितताओं और भ्रष्टाचारों से आँख बंद कर लेती है। मानकुमारी पूँजीपतियों की इसी शोषण वृत्ति पर व्यंग्य करती हुई कहती है -" बनिया सहायता करने को निकल पड़ा है। --- आपका सारा दया-धर्म ढकोसला है, आडम्बर है। आप क्या किसी

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 194

2- सीधी सच्ची बातें- पृ० 133

की सहायता करेंगे ? आप तो लूटने में विश्वास करते हैं, और इसमें हमारे देश की सरकार आपकीसहायता करती है। सारी शक्ति आपके हाथ में है।"[1] और आत्मीयता के क्षणों में प्रसिद्ध पूँजीपति मकोला इस आक्षेप को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं - "ठीक है, रानी साहिबा! इस देश की सरकार को बनाने में हम लोगों का हाथ है, और हम लोग इस सरकार को पलट भी सकते हैं। यह सारी सरकार पूँजी के हाथ बिकी हुई है, हमारे इशारों पर चीज़ों के दाम घटते -बढ़ते हैं, हमारे इशारों पर उद्योग-धंधों की स्थापना होती है। हमारे इशारों पर मंत्री नाचते हैं, हमारे इशारों पर विधायक अपना मत देते हैं। यहीसब बतलाया होगा रघुराजसिंह ने आपको। और इसमें उसने आपसे झूठ नहीं कहा। हमारे लिए कोई नैतिकता नहीं, हमारे पास कोई आस्था नहीं, क्योंकि हम सक्षम हैं और समर्थ हैं।"[2]

इतना ही नहीं ब मकोला को अपनी पूँजी की शक्ति का इतना गर्व है कि वह मंत्री जोखनलाल से स्पष्ट कह देते हैं - "हमें मिटाना इतना आसान काम नहीं होगा जितना लोग समझते हैं। उन लोगों को, जो हमें मिटाने की बात करते हैं, अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए स्वयँ पूँजी की आवश्यकता है और उन्हें हमसे ही यह पूँजी प्राप्त करनी होगी।"[3] पूँजी की शक्ति के इसी आभास के कारण पूँजीपतियों का शोषण और अत्याचार निरंतर बढ़ता ही गया। इसीलिए भारत-सरकार 'समाजवादी व्यस्था' की स्थापना का सिद्धांत लेकर भी क्रमशः पूँजीवाद क्रूर पंजे में फँसती चली गयी।

'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'भूले बिसरे चित्र', 'आखिरी दाँव', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सीधी सच्ची बातें', 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' और 'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यासों में वर्मा जी ने पूँजीवाद के निरंतर विकसित प्रभाव और प्रसार का अपने दृष्टिकोण से विवेचन किया है। उपर्युक्त उपन्यासों में आगत पूँजीपति पात्रों के माध्यम से वर्मा जी ने पूँजीपतियों की हृदयहीनता, चालाकी और भ्रष्टाचारिता का विस्तृत चित्रण किया है। वर्मा जी अपनी युवावस्था में एक प्रगतिशील कवि के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके हैं, उपन्यासों में भी उनकी प्रगतिशील विचारधारा का स्फुरण हुआ है। अपने इस दृष्टिकोण का प्रकाशन उन्होंने अपने उपन्यास के विभिन्न पात्रों द्वारा पूँजीपतियों के विरुद्ध व्यक्त की

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 241

2- ,, पृ० 241-42

3- ,, पृ० 119

गयी प्रतिक्रिया द्वारा किया है। `पूँजीवाद मनुष्य मक्कारी और शैतानियत है।`,(सीधी-सच्ची बातें-पृ० 354) `पूँजीवाद मनुष्य में भयानक विषमता का द्योतक है` (सामर्थ्य और सीमा- पृ० 115), `इस पूँजीवाद का देवता-पैसा, यह सब-कुछ कर सकता है, हरेक आदमी इस देवता का गुलाम है। एक-से-एक लुटेरों और बदमाशों को इस पूँजीवाद ने जन्म दिया है।` (सामर्थ्य और सीमा-पृ० 152) आदि कथनों द्वारा मानवता के शत्रु पूँजीपतियों के प्रति घोर विद्रोह की भावना वर्मा जी ने व्यक्त की है। `इंसान के लहू में शराब से ज्यादा नशा होता है।`-(सीधी सच्ची बातें -85) वाक्य में पूँजीवाद के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त हुआ है। लक्ष्मीचन्द (भूले बिसरे चित्र), सेठ शिवकुमार तथा शीतलप्रसाद (आखिरी दाँव) रामास्वामी चेट्टियार (अपने खिलौने) रतनचन्द्र मकोला (सामर्थ्य और सीमा), चिमन सेठ(सीधी सच्ची बातें), राधेश्याम (सबहिं नचावत राम गोसाईं) तथा शिवकुमार गाड़िया(प्रश्न और मरीचिका) आदि पात्रों के माध्यम से वर्मा जी ने पूँजीपतियों की विभिन्न विशेषताओं और रूपों को जीवंत कर दिया है। विशेषरूप से `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में राधेश्याम की कथा के द्वारा वर्मा जी ने पूँजीपतियों और नेताओं की साठगाँठ को पूर्णतया साकार कर दिया है। बड़े-बड़े उद्योगपतियों की समस्त कुटिलता और पाशविकता का यथातथ्य अंकन वर्मा जी ने `राधेश्याम` के माध्यम से किया है। इनके अमानुषिक कृत्यों से जो वितृष्णा पाठक के मन में भर उठती है उससे वर्मा जी के चित्रण की वास्तविकता और यथार्थता का परिचय सहज ही प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि पूँजीपति अपनी पूँजी से गर्वोन्मत्त होकर स्वयं तो अनैतिक कर्म करते ही हैं, साथ ही अपने दबाव में आने वाले सभी लोगों को अनाचार फैलाने के लिए विवश करते हैं। पूँजीपतियों के चाँदी के जूतों तले दबा हुआ जन-समुदाय बिलबिलाकर रह जाता है, जब वह देखता है कि बड़े-बड़े उद्योगपतियों ने अपनी पूँजी के सहारे जितवाकर शासन के महत्वपूर्ण पदों पर अपने ही आदमी बिठा रखे हैं, और उन पर जनता की पुकार का तनिक भी असर नहीं होता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने पूँजीवाद के व्यापक प्रसार समस्त विकृतियों और तद्विषयक कुपरिणामों का यथार्थ चित्रण अपनी कृतियों में किया है। उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति अपना विरोध ही प्रकट नहीं किया है वरन् `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में रामलोचन द्वारा `राधेश्याम` की गिरफ्तारी दिखलाकर इस व्यवस्था के प्रति कठोर कार्रवाई करने का संकेत भी दिया है जिससे जन-जन में व्याप्त भावना का प्रतिबिंबन भी हो जाता है।

गाँधीवाद :- 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का चित्र गाँधी जी के उल्लेख के अभाव में अधूरा ही मानाजायगा । अफ्रीका से गाँधी के आगमन पर सम्पूर्ण देश की दृष्टि उन पर जम गयी थी और गाँधी जी ने भी जनता की इच्छा को अंगीकार करते हुए स्वतंत्रता संग्राम में देश की जनता का नेतृत्व किया- इसके लिए उन्होंने किन-किन उपायों,नीतियों और आदर्शों को अपनाया इसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत अध्याय के पिछले पृष्ठों में किया गया है । वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में इस सम्पूर्ण भूमिका की बड़ी तर्कसंगत चर्चा की है । वर्मा जी ने दिखलाया कि गाँधी जी ने किस प्रकार देश की विभिन्न समस्याओं को सुष सुलझाने की चेष्टा करते हुए देश के विभिन्न वर्गों को अपने साथ चलने के लिए प्रेरित किया । उन्होंने हिन्दु-मुसलमान, गरीब,अमीर,जमींदार-किसान, और पूँजीपति-मजदूर सभी को सत्य,अहिंसा और प्रेम के अस्त्रों से स्वतंत्रता -संग्राम लड़ने को प्रेरित किया किन्तु वर्मा जी के अनुसार उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में पराजय और निराशा ही प्राप्त हुई- पिछले पृष्ठों में इसकी विस्तृत चर्चा की गई है । उन्हें अपनी लगभग सभी नीतियों में असफलता क्यों प्राप्त हुई ? इस प्रश्न का उत्तर खोजने के पहले हम गाँधी जी से सम्बंधित कुछ अन्य बातों पर विचार कर लेना भी समीचीन समझते हैं ।

गाँधी जी का व्यक्तित्व एक दैवी चमत्कृति से आपूर्ण था, बहुधा ऐसी धारणा लोगों की पायी जाती है, किन्तु उनके इस अलौकिक-से व्यक्तित्व के पीछे उनकी सच्चाई, ईमानदारी और मानवता-प्रेम का सम्बल था । इसी कारण गाँधी के सिद्धान्तों और नीतियों के विरोधी भी उनके व्यक्तित्व की सराहना करते थकते नहीं थे । वर्मा जी के उपन्यासों के अनेक ऐसे पात्रों ने गाँधी जी की महत्ता को हृदय से स्वीकार किया है जो अपने सिद्धान्तों के कारण गाँधी जी का विरोध करते थे । जमींदार रामनाथ तिवारी[1] अंग्रेज नौकरशाही का प्रतीक गंगाप्रसाद[2], मुस्लिम नेता फरहतुल्ला[3] तथा कम्युनिस्ट विचारधारा का समर्थन जमीलअहमद[4] सभी ने प्रशंगवश गाँधी जी के प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया है । गाँधी जी की अद्वितीय लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि उन्होंने समाज के पिछड़े तथा अस्पृश्य वर्ग की स्वतंत्रता तथा शिक्षा के लिए प्रशंसनीय कार्य किये । समाज के हीन समझे जाने वाले लोगों को समाज में समानता का पद दिलाने का प्रयत्न करके उन्होंने उनकी अपार

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृष्ठ-273-74

2- भूले बिसरे चित्र- पृ० 535

3- ,, पृ० 552-53

4- सीधी सच्ची बातें- पृ० 131

श्रद्धा और प्रेम अर्जित किया । इस महत् कार्य के लिए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती समाज-सुधारक स्वामी दयानन्द का अनुकरण किया । इसी ओर संकेत करता हुआ जमील कहता है -"महात्मा गाँधी ने आर्य समाज के सब प्रोग्राम अपना लिए हैं, जाति-पाँति को तोड़ना, अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा और स्वतंत्रता, विधवा-विवाह, छूआछूत वगैरह ।"[1]

अपने पिछले इतिहास से एक-एक अच्छाई को चुनकर, उन्हें न केवल अपना सिद्धान्त बनाकर वरन् उन्हें अपने जीवन में उतारकर भी गाँधी जी को अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई । हिन्दू-मुस्लिम समस्या, भाषा की समस्या, आदि में तो उन्हें असफलता मिली ही, किन्तु उनका सत्य-अहिंसा का सिद्धान्त उनके अनुयायियों तक में प्रतिफलित नहीं हो सका- इसका विस्तार से विवेचन हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं । इसका एकमात्र कारण वर्मा जी के दृष्टिकोण से यह था कि व्यक्ति की मूलभूत प्रवृत्तियों में पर्याप्त अंतर होता है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रवृत्तियों और भावनाओं से शासित होता है जो विभिन्न परिस्थितियों में अपने प्रभाव मनुष्य पर दिखाए बिना नहीं रहतीं ।[2] महात्मा गाँधी ने सत्य-अहिंसा के अपने सिद्धान्त को पूरे भारतीय समाज पर आरोपित कर विश्व के समक्ष एक चमत्कार करके दिखलाना चाहा था किन्तु विभिन्न मानसिक वृत्तियों से प्रेरित विशाल जन-समुदाय में उसका समुचित प्रतिफलन नहीं हो सका । परमेश्वरलाल का कथन इसी सत्य की ओर इंगित करता है -" ये अहिंसा और मनोबल वैयक्तिक गुण ही हैं, और इसीलिए यह अहिंसा चिर-स्थायी नहीं हो पाई । महात्मा गाँधी ने इस अहिंसा और मनोबल को सामाजिक गुण बनाने का यत्न किया है ।"[3]

सत्य अहिंसा के सिद्धान्त के अतिरिक्त गाँधी जी ने आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से समता के जिस आदर्श को अपने जीवन में उतारा था और अपने अनुयायियों से उसके पालन का आग्रह किया था वह भी भारत जैसे विशाल देश में चिरंतन नहीं बन सका बल्कि जिन पूँजीपतियों से आर्थिक सहायता लेकर उन्होंने अपना मिशन चलाने की आकांक्षा की थी,

---

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 176

2- (अ)"प्राणि-मात्र में विषमता संस्कृति का नियम है । तुम सब एक-सा बनने में कोशिश करो, एक ही ढंग से सोचना चाहो, लेकिन यह कभी भी सम्भव नहीं ।"
- टेढ़े मेढ़े रास्ते-पृ० 138

(ब)"व्यक्ति की आधारभूत प्रवृत्तियाँ विशेष परिस्थितियों में उभरेंगी ही ।"-
- भूले बिसरे चित्र-पृ० 359

3- सीधी सच्ची बातें- पृ० 568

उन्हीं ने उनके उद्देश्य का सर्वाधिक संहार किया । गाँधी जी के इसी पक्ष की कमी की ओर संकेत करते हुए सुभाष बाबू ने कहा था - " Mahatma has endeavoured in the past to hold together all the warring elements-- Landlord and peasent, capitalist and labour rich and poor. That has been the secret of his success, as surely as it will be the ultimale cause of failure."[1]

इस प्रकार यह निस्सन्देह रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि गाँधी जी ने जिस विचारधारा का बड़ी सच्चाई और पवित्रता के साथ सूत्रपात किया था, वह उनके जीवनकाल में ही केवल आंशिकरूप से ही सफल हो सकी और कालान्तर में तो, स्वतंत्रता-संग्राम में उनके समक्ष श्रद्धा से झुककर, उनके आदेशों का पालन करने वाले उनके अनुयायी ही गाँधीवाद की आदर्श वीथिका से च्युत हो गये । आज गाँधी जी का व्यक्तित्व भले ही भारत की विशाल जनता के बड़े भाग को अपने समक्ष श्रद्धा से नतमस्तक हो जाने के लिए विवश कर दे किन्तु 'गाँधीवाद' - यह तो मात्र एक मखौल बनकर रहा गया है ।

आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति

पिछले पृष्ठों में हमने वर्मा जी के उपन्यासों में प्रतिबिम्बित देश के राजनीतिक जीवन का अन्वीक्षण किया अब हम राष्ट्र की राजनीतिक स्थिति से उद्वेलित भारतीय समाज का सिंहावलोकन करना मीसमीचीन समझते हैं । समाज को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाला पहलू अर्थ का है । भारत में अंग्रेजी राज्य भारत के घोर आर्थिक शोषण का ही दूसरा नाम है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसके लिए खेद व्यक्त किया था -"अंगरेज राज सुखसाज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी ।।"

उसके पश्चात् उस युग का चित्रण करनेवाला संभवत: कोई ही ऐसा साहित्यकार होगा जिसने अंग्रेजों के इस शोषण का उल्लेख न किया हो । भगवतीबाबू ने भी अपने उपन्यासों में भारत की तत्कालीन आर्थिक दशा का यथार्थ चित्रण किया है । इतना ही नहीं, भगवती बाबू स्वयं अर्थशास्त्र के विद्यार्थी रह चुके हैं अत: उन्होंने बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध की आर्थिक स्थिति और उससे उत्पन्न अनेक समस्याओं का यथास्थान संकेत किया है । ब्रिटिश सरकार की नीति का निर्धारण इस प्रकार हुआ था कि विभिन्न स्रोतों से भारत का धन इंग्लैण्ड पहुँचता जाय । भारत में रहने वाले अंग्रेज० अंग्रेज अफसरों की तनख्वाह के रूप में,

---

1. Indian struggle- Page-298

ब्रिटेन से आयातित भोग विलास की सामग्री के भुगतान के रूप में तथा भारत से आनेवाले कच्चे माल के रूप में भारत की अपार धन-सम्पदा ब्रिटेन की ओर खिंचती चली जाती थी। एक अंग्रेज ने बड़ी आलंकारिक भाषा में भारत की सम्पत्ति इंगलैण्डजाने की बात कही है - "हमारी पद्धति एक स्पंज के समान है जो गंगा तट से सब अच्छी चीजों को चूसकर टेम्स-तट पर ला निचोड़ती है।"[1] टेढ़े मेढ़े रास्ते में वर्मा जी ने एक जमींदार और एक अंग्रेज डिप्टी-कमिश्नर के माध्यम से भारत की आर्थिक दुर्दशा का बड़ा वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। भारत के जमींदार और ताल्लुकेदार अनपढ़ ग्रामीण जनता का शोषण करके विशाल सम्पत्ति एकत्रित करते थे और उससे महंगी ब्रिटिश भोग सामग्री क्रय करते थे। इतना ही नहीं ये राजे-महाराजे तफरीह के लिए इंगलैण्ड जाते थे और लाखों रुपया फूँककर आते थे। उधर ब्रिटिश कर्मचारियों को जो तनख्वाह मिलती थी वह भारत से उगाहे धन के द्वारा ही मिलती थी। हिन्दुस्तान के धन का बहुत बड़ा भाग इंगलैण्ड को उस रुपये के सूद के रूप में मिलता था जो इंगलैण्ड ने जबर्दस्ती हिन्दुस्तान को कर्ज में दिया था। इसके अतिरिक्त भारत से व्यापार के कारण ब्रिटेन को बहुत अधिक लाभ होता था और भारत की जनता अकाल और दुर्भिक्ष से निष्प्राण होती जा रही थी।[2] द्वितीय विश्वयुद्ध के समय बंगाल के दुर्भिक्ष का बड़ा मार्मिक एवं हृदय विदारक चित्र वर्मा जी ने प्रस्तुत किया है।[3] एक ओर ब्रिटिश अर्थनीति के कारण देश की गरीब जनता भूख और दरिद्रता की पीड़ा से कराह रही थी दूसरी ओर विश्वयुद्ध के कारण देश की आर्थिक स्थिति और अधिक बिगड़ती जा रही थी। अंग्रेज सरकार अनाज के दाम ऊँचे करके लोगों का सुरक्षित भंडार खाली करवा रही थी और इस प्रकार गरीब जनता का जीवन बिल्कुल असुरक्षित हो गया था। जमील अहमद इसी ओर संकेत करता हुआ कहता है - "तुम यह तो जानते ही हो कि नई फसल का अनाज बाजार में नहीं आता, नया अनाज लोग नहीं खाते। होता यह है कि एक साल का अनाज स्टाक में पड़ा रहता है। यह स्टाक अगर किसी साल फसल खराब हो जाय तो हमारी हिफाजत करता है। तो हमारी ब्रिटिश सरकार इस स्टाक को निकलवा रही है अनाज के चढ़े दामों पर खरीदारी करके। रुपये के लालच में लोग अपना नया अनाज बेच रहे हैं। मेरा ऐसा ख्याल है कि जिस मिकदार में सरकार की खरीदारी हो रही है उससे दो या तीन साल में अनाज का स्टाक

1- हमारी परम्परा - प्रो० हुमायूँ कबीर- पृ०74 -75 से उद्धृत।

2- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 43,44,45,46

3- सीधी सच्ची बातें- पृ० 566,570,572 आदि।

खत्म हो जायगा । तब हालत यह आ जाएगी कि अगर फसल होती है तो तुम्हारे पास खाने को है और अगर फसल बरबाद हो जाती है तो तुम्हें भूखों मरना पड़ेगा ।'[1]

इस विश्वयुद्ध के कारण देश की जो दुर्दशा हो रही थी उसका शब्दचित्र भी द्रष्टव्य है -' लेकिन युद्ध हो रहा था - कहीं शान्ति नहीं, कहीं स्थायित्व नहीं । और इस युद्ध के फलस्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था बेतरह बिगड़ रही थी । चीजों के दाम तेजी से बढ़ रहे थे - मनुष्य बदनीयत और बेईमान हो गया था । बाजार में कपड़ा नहीं दिखता था, अठगुने या दसगुने दामहोगये थे उसके, लेकिन इन दामों पर खरीदने की क्षमता किसमें थी ? इंग्लैंड में कंट्रोल लगे- उस कंट्रोल के फलस्वरूप वहाँ ब्लैक मार्केट का जन्म हुआ, और वह ब्लैक-मार्केट हिन्दुस्तान में पहुँच गया । यहाँ भी खुले बाजार से निकलकर माल ब्लैक मार्केट में चला गया था । अनाज के दाम दुगुने और तिगुने हो रहे थे । चारों ओर एक भयानक अभाव की छाया । और इस सबका कारण था युद्ध ! युद्ध के दानव के मुख में सब-कुछ समाया जा रहा था - अन्न, वस्त्र, स्वाभिमान, जीवन ।'[2] देश की ऐसी असामान्य परिस्थिति में देश के व्यापारियों ने खूब मुनाफा कमाया । देश में काला-बाजारी और मुनाफाखोरी का प्रारंभ किस प्रकार हुआ- उसे वर्मा जी ने लाला सेवाराम के माध्यम से बड़ी कुशलता से चित्रित किया है ।[3] सैनिकों के सामान का ठेका लेकर विश्वयुद्ध के समय भारतीय व्यापारी लखपति बन गये और देश की गरीब जनता दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के अभाव में परेशान होती रही । लेकिन यह अभाव मनुष्य-निर्मित था- इस तथ्य की पुष्टि जगतप्रकाश के कथन से हो जाती है -' काला बाजार मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति की उपज है, --- यह मुनाफाखोरी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण पहलू है । ---- अभाव पूँजीवादी अर्थव्यवस्था द्वारा कृत्रिम रूप से पैदा किये जा सकते हैं । यह ब्लैक मार्केट मानव के बौद्धिक विकास की उपज है जिसका रूप इस विश्वयुद्ध की असाधारण परिस्थितियों में उभर आया है ।'[4] परतंत्र भारत में देश की आर्थिक दुरवस्था को स्वाभाविक माना जा सकता है किन्तु देश के स्वतंत्र होने पर भी देश की आर्थिक प्रगति सही मार्ग को नहीं पकड़ सकी।ह और सामान्य जन के लिए पेट की भूख का प्रश्न बना ही रहा । विदेशों से अरबों रुपयों की विदेशी सहायता(कर्ज) लेकर देश के कर्णधारों ने

1- सीधी सच्ची बातें- पृ0 342

2- ,, ,, पृ0 514

3- ,, ,, पृ0 399

4- ,, ,, पृ0 516

देश का औद्योगिक विकास करके भारत को विश्व के समृद्ध और विकसित देशों की पंक्ति में खड़ा कर देने का स्वप्न देखा लेकिन भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि की उपेक्षा से यह स्वप्न न तब साकार हुआ न भविष्य में कभी इसकी संभावना ही है।[1] उदयराज का विचार सत्य ही प्रतीत होता है -' अमीर बेतहाशा अमीर बनते जा रहे थे और साधारण जनसमुदाय बुरी तरह दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहा था। और यह सब हो रहा था महात्मा गाँधी के आदर्शों पर चलनेवाली कांग्रेस की छत्रछाया में।'[2] ब्रिटिश शासन से ही देश की निरंतर गिरती हुई आर्थिक अवस्था ने भारतीय समाज को परिवर्तन की भँवर में डाल दिया।

भारत में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् से ही भारतीय जनमानस में एक वैचारिक अस्त-व्यस्तता का संक्रमण हो गया था। पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता के प्रभाव-स्वरूप भारतीय मानस पथभ्रष्ट हो गया। क्योंकि प्राचीन मूल्यों और परम्पराओं के प्रति उसमें आस्था नहीं रह गयी थी और नवीन जीवन-मूल्यों का कोई प्रशस्त मार्ग उसे दिख नहीं रहा था।' समस्त पुरातन मूल्यों और विश्वासों के प्रति शंका उठने लगी। प्राचीन विधि-विधान और आचार-विचार लड़खड़ाने लगे। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाएँ द्रुतगति से चूर-चूर होने लगीं। भारतवर्ष पूर्णतया परिवर्तन की भँवर में पड़ गया।'[3]

इस समय तक भारत मुख्यतया दो भागों में विभक्त था- उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग। मध्यवर्ग नाममात्र को ही था, किन्तु विप्लव के उपरान्त अंग्रेजों के दमनचक्र के कारण उच्च वर्ग का पतन हुआ। दूसरी ओर अंग्रेजी राज्य में प्राप्त रेल, डाक, तार आदि की सुविधाओं लार्ड मैकाले की शिक्षानीति, अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के प्रभावस्वरूप निम्नवर्ग का बौद्धिक विकास होने लगा जिससे एक ऐसे मध्यवर्ग का उदय हुआ जो पैतृक सम्पत्ति के अभाव में तथा पढ़े-लिखे होने के कारण किसानी या मजदूरी न कर पाने की मनोदशा में अपने क्षेत्र से बाहर जाकर नौकरी करके अपनी आजीविका चलाने लगा। वर्मा जी के उपन्यासों के अधिकांश पात्र उच्च वर्ग या मध्यवर्ग के हैं तथापि मध्य वर्ग के पात्रों को लेकर उन्होंने जो उपन्यास या कहानियाँ लिखीं, उनमें इस वर्ग का समग्र रूप प्रतिबिम्बित हो गया है। यहाँ हम क्रमशः प्रत्येक वर्ग का समुचित विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 381

2- ,, ,, पृ० 541

3- हमारी परम्परा- प्रो० हुमायूँ कबीर, पृ० 74-75

<u>उच्च वर्ग :-</u> वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में उच्च वर्ग का बड़ी तन्मयता से चित्रण किया है। इस वर्ग में जमींदार,ताल्लुकेदार, पूँजीपति, नेता और बड़े-बड़े जज व अफसरों का समावेश हो जाता है। उच्चवर्गीय पात्रों में दो विशिष्टताओं का वर्मा जी ने बराबर संकेत किया है। इनमें कुछ तो ऐसे हैं जो अपनी कुलीनता और वंश परम्परा तथा आभिजात का निर्वाह जीवन पर्यन्त करते हैं, उनमें अपने उच्च वंश की अहम्मन्यता कूट-कूटकर भरी होती है तथा कुछ ऐसे हैं जिन्होंने धन-सम्पत्ति के आधिक्य में अपनी आत्मा को ही बेच डाला है। उच्च वर्गीय पात्रों का चित्रण करते समय वर्मा जी ने इस वर्ग की विकृतियों का यथार्थ अंकन किया है। 'आखिरी दाँव' का सेठ शिवकुमार, सेठ शीतलप्रसाद, 'अपने खिलौने' का वीरेश्वर प्रताप,'भूले बिसरे चित्र' के राजा सत्यजित प्रसन्न सिंह, और 'प्रश्न और मरीचिका' के शिवकुमार गाबड़िया आदि कुछ ऐसे पात्र हैं जिनके माध्यम से वर्मा जी ने उच्च वर्ग में व्याप्त भोगविलास के वातावरण को प्रस्तुत किया है। इस वर्ग की पार्टियों, सभाओं तथा व्यक्तिगत जीवन में मदिरापान तो सामाजिक शिष्टाचार है, पिता के समक्ष पुत्र का मदिरापान अशिष्टता का द्योतक नहीं।[1] इसके साथ ही परस्त्री गमन तथा अनैतिक सम्बंध स्थापित करना भी इस वर्ग के लिए जैसे आवश्यक बन गया है। धन ने इनकी आत्मा को इतना नीचे गिरा दिया है कि नारी की इज्जत से खेलना इनका एक प्रिय खेल बन गया है।'रेखा' और 'सामर्थ्य और सीमा' के सभी प्रमुख पात्र उच्च वर्ग या उच्च-मध्यवर्ग से सम्बंधित हैं, इनके चारों ओर का वातावरण वैभव और भोगविलास से आच्छादित दिखता है। उच्च वर्ग की विकृतियों की ओर संकेत करता हुआ रिपुदमनसिंह कहता है -' यह ऐश्वर्य और भोग-विलास का जीवन, जहाँ कोई चिंता नहीं कोई श्रम नहीं, कोई जिम्मेदारी नहीं ----- इस जीवन में मनुष्य बड़ी जल्दी बहकता है। जहाँ धन है वहाँ धन ही देवता बन जाया करता है, क्योंकि धन में शक्ति केन्द्रित हो चुकी है। यह मेरा दुर्भाग्य है बाबू गंगाप्रसाद, कि मैं ऐसे कुल में पैदा हुआ जहाँ चिन्ताओं के अभाव में विकृतियों का साम्राज्य है।'[2]

राजाओं,जमींदारों,ताल्लुकेदारों तथा पूँजीपतियों में ही इन विकृतियों का साम्राज्य हो, ऐसा नहीं है। वर्मा जी का विचार है कि जहाँ धन है वहाँ प्रायः किसी

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ0 143
'संकोच करने की बात नहीं, बालिग लड़का बराबरी वाला हो जाता है और सभ्य समाज में इसका खुलेआम प्रचलन रहा है।'

2- भूले बिसरे चित्र- पृ0 361

न किसी प्रकार की अनैतिकता की रहस्य-गाथा छिपी ही रहती है । `सीधी सच्ची बातें` के बैरिस्टर बंसगोपाल, `सबहिं नचावत राम गोसाईं` के राधेश्याम, जबरसिंह, कुंदनलाल, प्रश्न और मरीचिका` के प्रेम मदान, रूपा शर्मा, बिन्देसरी देवी, मेजर अमरजीत और अंजनीकुमार शर्मा की प्रासंगिक कथाओं के द्वारा वर्मा जी ने इस तथ्य की ओर प्रकाश डालने का यत्न किया है कि उच्च वर्ग में अनैतिकता, भ्रष्टाचार और शरीरिक कुंठाओं का विष सम्पूर्ण भारतीय समाज में कड़वाहट घोल रहा है जिसके दुष्प्रभाव से भोली भाली निरीह जनता का निरंतर शोषण हो रहा है । इसके विपरीत `टेढ़े मेढ़े रास्ते` के रामनाथ तिवारी, `सामर्थ्य और सीमा` के मेजर नाहरसिंह, `भूले बिसरे चित्र` के ठाकुर गजराज सिंह तथा `सबहिं नचावत राम गोसाईं` के गम्भीरसिंह कुछ ऐसे सामंतवर्गीय पात्र हैं जिनके माध्यम से वर्मा जी ने इस वर्ग की कुछ उच्च विशिष्टताओं का भी चित्रण किया है । रामनाथ तिवारी में वर्गगत अहम्मन्यता के होते हुए भी कुलीनता, वंशमर्यादा और सच्चरित्रता से गरिमामण्डित हैं । उनमें कुलीन जमींदारों की भाँति दृढ़ता और हठधर्मिता के होते हुए भी मानवीय भावनाओं का अभाव नहीं है, वह अपने विरोधी के उदात्त गुणों की प्रशंसा करने में अपनी हेठी नहीं समझते । इसी प्रकार नाहरसिंह, गजराजसिंह और गम्भीरसिंह में भी कुछ दुर्बलताओं के होते हुए भी कुलगौरव की भावना कूट-कूटकर भरी है, इन सभी पात्रों में मानवीय दया, ममता, क्षमा के भाव उनके चरित्र को सम्माननीय ऊँचाई प्रदान करते हैं ।

उच्चवर्ग के कुछ ऐसे युवा पात्रों का चरित्र चित्रण वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में किया है जिनमें अपने वर्ग की सामान्य विशेषता शराबखोरी के होते हुए भी एक नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हो गया था । जीवन के विभिन्न अनुभवों से उन्होंने अपने वर्ग की विकृतियों को सुधारने का यत्न किया था । `तीन वर्ष` का अजित और `भूले बिसरे चित्र` का रिपुदमनसिंह इसी तरह के पात्र हैं । अजित वैभव की छलछद्म भरी दुनिया से ऊबकर रमेश की सरलता और सच्चाई को गले से लगाता है और ही रमेश को वैभव की विकृतियों में फँसता देख उसे सावधान भी करता है । इसी प्रकार रिपुदमनसिंह भी गंगाप्रसाद को व्यभिचार की दिशा में बढ़ने से रोकता है । इनके माध्यम से वर्मा जी ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि जहाँ उच्चवर्गीय समाज में अधिकांशतः, कंचन, कामिनी और कादम्ब का पाशविक नर्तन होता रहता है, वहीं इस वर्ग का एक अंश ऐसा भी है जो अपने कुल गौरव से प्रेरित होकर अथवा जीवनानुभवों से चेतना ग्रहण करके सच्चरित्रता, उदारता और मानवप्रेम के गुणों से अभिमण्डित है ।

<u>मध्य वर्ग</u> :- एक सुप्रसिद्ध विचारक और शिक्षाशास्त्री प्रो० हुमायूँ कबीर का कथन है कि 'आधुनिक भारतवर्ष में मध्यवर्गों का असन्तुलित विकास सम्भवत: सबसे प्रमुख घटना है।'[1] इस कथन की सत्यता का आभास हमें उस समय होता है जब हम देखते हैं कि अपने विकास काल से लेकर आज तक मध्यवर्ग का जीवन और व्यक्तित्व सर्वाधिक उथल-पुथल से युक्त, बहुरंगी एवं संघर्ष से भरा हुआ है। भारतीय समाज की अधिकांश समस्याओं का परिवाहक यही वर्ग रहा है। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि मध्यवर्ग की तुलना में उच्चवर्ग को समाज की कोई चिंता नहीं रहती, वह सुख सुविधा के समीसाधनों से सम्पन्न होने के कारण समाज के दण्डविधान से मुक्त रहने में सफल रहा है। धन की मार से वह सामाजिक कर्मकाण्ड और विधान को बदल सकने में पूर्ण समर्थ है।[2] इसके बिल्कुल विपरीत निम्नवर्ग अज्ञान और अन्ध परम्पराओं से संवेष्टित कुरीतियों और कुप्रथाओं से पूर्णरूपेण जकड़ा रहा है, इस वर्ग में इन बंधनों से मुक्त होने की चेतना का सर्वथा अभाव पाया जाता रहा है। किन्तु, मध्य-वर्ग द्विधा-संत्रस्त हो उठा क्योंकि अतीत की परम्पराओं को सहसा उतार फेंकने का साहस वह एकत्र नहीं कर पा रहा था जबकि पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रभाव के कारण उसमें समाज की सड़ी-गली रूढ़ियों से छुटकारा पाने की अटूट कामना छिपी हुई थी। अपनी मिथ्या सम्मान-भावना के कारण इस वर्ग को अपने जीवन-स्तर का निर्वाह करना ही पड़ता था जबकि आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस कार्य में उसे विकट दुरूहता का सामना करना पड़ता था। इस संदर्भ में प्रो० हुमायूँ कबीर का विचार समुचित प्रतीत होता है ----- सामान्यतया उन्हें एक शिष्टोचित जीवन मान बनाए रखना पड़ता है, जो बहुत करके उनकी शक्ति से परे होता है। यह अनवरत आर्थिक संघर्ष उनके जीवन की समस्त गतिविधि पर ब प्रभाव जमाए रहता है।'[3] वर्माजी के उपन्यासों में मध्यवर्ग की उपरि-संकेतित विवशता, संघर्ष और उनसे उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का विशद चित्रण मिलता है।

भारतीय समाज का मध्यवर्ग पैतृक सम्पत्ति के अभाव में पढ़ लिखकर नौकरी करके अपना जीवन-निर्वाह करने का यत्न करता है इसीलिए इस वर्ग में शिक्षा का सर्वाधिक प्रसार

1- हमारी परम्परा- प्रो० हुमायूँ कबीर- पृ० 100

2- देखिए- 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में उमानाथ की विदेश यात्रा के उपरान्त प्रायश्चित का प्रसंग पृष्ठ-128-129 तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में सिल्वेनिया के शुद्धी-करण का प्रसंग- पृ० 104-105

3- हमारी परम्परा- प्रो० हुमायूँ कबीर, पृ० 100

होता है । उच्च-शिक्षा के कारण वह अपने परिवेश की 'नवीनता' को ग्रहण करने के लिए उत्सुक हो उठता है, किन्तु इसके लिए उसे अपने समाज के उपहास और विरोध का सामना करना पड़ता है । वह, न केवल अपने समाज के उच्चवर्ग और निम्नवर्ग का सामना करता है वरन् उसे अपने वर्ग के पिछड़े हुए लोगों का भी सामना करना पड़ता है, यह आन्तरिक संघर्ष उसके जीवन को दु:साध्य बना देता है । इस स्थिति का विवेचन करते हुए वर्मा जी कहते हैं -'जिसे लोग मध्य वर्ग कहते हैं उसमें यह जीवित रहने का संघर्ष भयानक है । इस मध्यवर्ग के पास विशिष्टता का ढोंग है, सम्पन्नता का दिखावा है। इसके पास सामाजिकता है, इसके पास नैतिकता है । इन सामाजिक और नैतिक मान्यताओं का निर्माता यह मध्यवर्ग ही ह तो है - ये मान्यताएँ केवल इस मध्यवर्ग के सत्य हैं और मान्यताओं को वह अपने सिर पर लादे हुए है । इस मध्यवर्ग के पैर लड़खड़ा रहे हैं - लेकिन अपने सिर के बोझ को उतार फेंकने का उसके पास साहस नहीं है ।'[1] 'थके पाँव' के मोहन और केशव ऐसे ही मध्यवर्गीय पात्र है जो अपने वर्ग की मान्यताओं और मर्यादाओं से पिसते हुए अपना जीवन होम कर रहे हैं किन्तु ऐसे ही मध्यवित्तीय परिवारों में एक ऐसा उठता हुआ नवयुवक वर्ग है जो अपनी 'वैयक्तिक नैतिकता' का निर्माण करके, अपने वर्ग के सामान्य क्रम को तोड़कर सामर्थ्यवान बन रहा है, धनी बन रहा है । 'थके पाँव' का किशन ऐसे ही महत्वाकांक्षी मध्यवर्गीय व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है । मध्यवर्ग के ऐसे ही पृथक्-मनोवृत्तियों वाले व्यक्तियों का तुलनात्मक चित्र वर्मा जी ने दो भाइयों के माध्यम से प्रस्तुत किया है -'दुनिया में जो कुछ है वह पैसा है और किशन उस पैसे को प्राप्त करना चाहता है, देना नहीं चाहता । किशन आगे बढ़ना चाहता है, उसमें उल्लास है, उसमें उमंग है, उसमें ~~उसमें~~ महत्वाकांक्षा है । और वही किशन का बड़ा भाई मोहन भी तो है, दबा हुआ, टूटा हुआ, उत्साहहीन । उस मोहन में भी कभी उत्साह-उमंग थे, इस मोहन में भी कभी महत्वाकांक्षाएँ थीं । लेकिन मोहन को परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं मिलीं, वर्तमान परिस्थितियों से विद्रोह करने का साहस उसमें नहीं था ; वह परम्पराओं का अनुयायी था ।'[2]

मोहन के विपरीत किशन की 'वैयक्तिक नैतिकता' में 'देने' की मान्यता का अस्तित्व नहीं है, इसीलिए वह विवाह करने से भी इन्कार कर देता है क्योंकि-'विवाह करना, परिवार को एकत्रित करना- इनके साथ ही देने का क्रम आरम्भ हो जाता है ।

1- थके पाँव- पृ0 81-82

2- ,, पृ0 101

आदमी अकेला तो लड़ सकता है, लेकिन आश्रितों का दल लेकर परिस्थितियों से बड़ा लड़ना उसके लिए असम्भव है।'[1] इसके अतिरिक्त केशव के इस कथन से, कि -'मोहन भैया, परिवार के प्रति मेरा जो कुछ भी कर्तव्य है वह मैं जानता हूँ, लेकिन उसके पहले अपने प्रति भी मेरा कुछ कर्तव्य है यह मैं कैसे भूल जाऊँ। अपने को कष्ट में डालकर रहना-मेरे ख्याल से यह सबसे बड़ी बेवकूफी है। दूसरे तुम्हें उस समय पूछ सकते हैं जब तुम खुद अपने को पूछो।'[2] वैयक्तिक विकास को लालायित युवा पीढ़ी के अधुनातन दृष्टिकोण का प्रकाशन हो जाता है। इस वैयक्तिक नैतिकता के आधार पर विकसित वर्ग को वर्मा जी ने 'उच्चमध्यवर्ग' की संज्ञा से अभिहित किया है और अपनी परम्पराओं व मान्यताओं से संवेष्टित वर्ग को उन्होंने 'मध्यवर्ग' का नाम दिया है।

उच्च मध्यवर्ग संयुक्त परिवार के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर निरंतर अपना विकास करता जाता है जबकि मध्यवर्ग सामाजिक नैतिकता से आबद्ध होकर या तो निम्न मध्यवर्ग की ओर गिरता जाता है अथवा समाज में अपनी झूठी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए नाजायज तरीकों का अवलम्ब ग्रहण करके अपने जीवन स्तर को बनाए रखने का यत्न करता है। इसीलिए 'आखिरी दाँव' का रामेश्वर सट्टा खेलता है, 'भूले बिसरे चित्र' के मुंशी शिवलाल स्वयं रिश्वत लेते हैं और अपने बेटे से भी रिश्वत इत्यादि लेकर जमीन जायदाद बना लेने की आशा करते हैं, 'थके पाँव' के केशवचन्द्र जीवन भर पाक-साफ रहकर भी अंत में एक हजार की रिश्वत लेने पर विवश हो जाते हैं। आज देश में इस अनैतिक आमदनी का जो नग्न नर्तन हो रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। वर्मा जी के चित्रण की सत्यता इस प्रकार स्वतः सिद्ध है। अनैतिक साधनों से सम्पत्ति एकत्रित करने की व्यापक प्रवृत्ति का परिचय हमें उस समय विकट रूप धारण करके मिलता है जब हम देखते हैं कि मुंशी शिवलाल सम्पत्ति के लिए अपने बेटे के अनैतिक सम्बंधों को बढ़ावा देने में हिचकते नहीं हैं -'ज्वाला बेटा, तुम्हारी क़िस्मत खुल गई। बहुत तगड़ा शिकार फँस गया है। --- अपने लिए जमीन-ज़ायदाद इकट्ठा कर लो। लम्बरदारिन जैदेई के पास नक़द और ज़ेवर मिलाकर लाखों की जमा-जथा है।'[3] किन्तु इसके विपरीत ज्वालाप्रसाद जैदेई की सम्पति को लोभ की दृष्टि से नहीं नहीं देखते, यह दूसरी बात है कि जैदेई द्वारा कुछ दिए जाने पर वह उसे हिचकते हुए स्वीकार

1- थके पाँव- पृ0 101

2- ,, पृ0 97

3- भूले बिसरे चित्र- पृ0 114

कर लेते हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि मध्यवर्ग का आदमी प्राय: भीरु प्रकृति का होता है, अपनी प्रतिष्ठा व समाज की घूरती निगाहों का भय उसे सदैव आशंकित किए रहता है। समाज में अपनी प्रतिष्ठा पर आँच न आए- इसीलिए ज्वालाप्रसाद अपने चाचा व उनके लड़कों से अपना सम्बंध तोड़ लेते हैं और नम्बरदारिन जैदेई द्वारा ~~दि~~ रुपये दिए जाने की बात का भंडाफोड़ हो जाने पर वह भयभीत हो जाते हैं। मध्यमवर्गीय समाज की मिथ्या-सम्मान की भावना के कारण इस वर्ग में सामान्य रूप से दो विशेषताओं का समावेश होता है- एक तो वह, समाज से डर-डरकर कुछ कायरता की प्रवृत्ति से ग्रस्त हो जाता है, समाज के अत्याचार व अन्याय का प्रतिकार करने के साहस का अभाव उसमें परिलक्षित होता है। यह कायरता जहाँ समाज में व्यवस्था और स्थिरता लाती है, वहीं उसके पारिवारिक जीवन को कलह और अशांति से भर देती है। मध्यमवर्गीय व्यक्ति अन्दर ही अन्दर टूटकर परिवार के सदस्यों पर अपनी खीफ उतारता है। समाज से उत्पीड़ित होकर वह परिवार को ~~अब~~अपनी जोर-जबरदस्ती से शासित करना चाहता है। इस संदर्भ में वर्मा जी का विचार समीचीन प्रतीत होता है -'मध्यवर्ग का आदमी चीखता है, चिल्लाता है, सिवा चीखने-चिल्लाने के उसके पास और कुछ है नहीं। उस चीख और चिल्लाहट के अस्त्र से ही वह शासन कर सकता है।'[1]

पारिवारिक कलह के अतिरिक्त इस वर्ग में दूसरों की आलोचना करने तथा दूसरों से ईर्ष्या करने की प्रवृत्ति सर्वाधिक पायी जाती है। मध्यमवर्गीय व्यक्ति जब अपनी समस्याओं को ~~सुलझ~~ सुलझाने में असमर्थ हो जाता है तो उन लोगों की आलोचना करने लगता है जो उसके पथ में बाधक बने हैं; उनसे ईर्ष्या करने लगता है जो अपनी समस्याओं का साहस और लगन के साथ निराकरण करने में सफल हो गये हैं। प्रो० हुमायूँ कबीर का कथन द्रष्टव्य है- 'सामाजिक असहिष्णुता जितनी मध्यवर्गों में पायी जाती है उतनी अन्य वर्गों में शायद न मिले। प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से डरता है और ईर्ष्यालु बना रहता है। व्यक्तिवादी मनोवृत्ति पराकाष्ठा तक पहुँची रहती है और एक रोग की तरह इस वर्ग को दबाए रहती है।'[2] वर्मा जी ने मध्यमवर्ग की इन सामान्य वृत्तियों को अपने उपन्यासों में बखूबी उकेरा है। 'थके पाँव' का उत्तरार्द्ध इसी पारिवारिक कलह, आलोचना और ईर्ष्या के अन्तरंग दृश्यों से रूपायित हुआ है। 'भूले बिसरे चित्र' के दूसरे खण्ड में भी इस तरह के मार्मिक दृश्य मध्यमवर्गीय जीवन को उजागर कर देते हैं।

1- थके पाँव- पृ० 108
2- हमारी परम्परा- पृ० 101

आर्थिक अभाव में कलह, क्लेश और आलोचना इत्यादि का आना तो स्वाभाविक है, किन्तु इन सबके साथ मध्यवर्गीय जीवन में ममता, दया और क्षमा आदि मानवीय गुणों का स्रोत पूर्णतया शुष्क हो जाता है, ऐसा नहीं। मारपीट, गाली गलौज और लांछन के बीच मध्यमवर्गीय समाज में पारिवारिक प्रेम और ममता का अविरल प्रवाह भी गतिमान रहता है इसे वर्मा जी ने स्वीकार किया है। निरंतर अभाव से जूझते परिवार में माधुरी की अपने बेटे किशन के प्रति ममता, सुशीला का अपने पति के प्रति प्रेम,[1] यमुना की अपनी देवरानी के प्रति सहानुभूति, ज्वालाप्रसाद व उनके चाचा चाची का आन्तरिक प्रेम[2] के भाव मध्यवर्गीय परिवारों में जीवन फूँकने का प्रयास करते हैं। 'प्रश्न और मरीचिका' में कलह और प्रेम के समन्वित रूप के प्रति उदयराज की प्रतिक्रिया मध्यमवर्गीय समाज की वास्तविकता का सार्थक उद्घाटन करती है - ' मारपीट, गाली गलौज और इसके बीच असीम आत्मीयता से भरा हुआ यह हमारा समाज स्थित है। मैंने अपने परिवार का असली रूप देखा। कीचड़ और सड़ाँध से भरी हुई भूमि जिसमें अनगिनती कीड़े-मकोड़े, जीव-जन्तु पल रहे हैं। कुछ विषाक्त और भयंकर, कुछ अस्तित्वहीन और निरापद, कुछ शान्त, शिष्ट और सौम्य।'[3]

अनगिनत अभावों एवं उलझनों से घिरे मध्यमवर्ग का जीवन इतना दुरूह एवं जटिल है कि उसे समझ पाना अत्यंत कठिन समस्या है। अपनी एकमात्र पूँजी उच्च शिक्षा और कुशाग्र ग्रहणशीलता के कारण यह वर्ग प्रत्येक 'नवीन' को अपनाने की चेष्टा करता है,
इतिहास साक्षी है कि   तत्काल प्रभावित करती है हमारा पिछला
किसी भी प्रकार की सामाजिक या राजनीतिक हलचल उसे स्वतंत्रता-संग्राम के समय मध्यवर्ग के हार्दिक सहयोग से ही इस आन्दोलन को गति मिली थी, इसका एकमात्र कारण इस वर्ग के युवकों की जागरूकता है। यह दूसरी बात है कि अपने सहयोग को स्थायित्व प्रदान कर पाना उसके लिए असम्भव हो जाए। मध्यमवर्ग में समाज की गतिविधियों में सहयोग करने की चेतना और कामना का अभाव नहीं है, किन्तु उसकी निजी समस्याएँ उसकी चेतना को कुंठित कर देती हैं और वह सामाजिक व राजनीतिक गतिविधियों की ओर ललचायी दृष्टि से देखने के लिए विवश हो जाता है। जीवन-निर्वाह से इतर कार्यवाहियों के लिए मुक्त रह जाना उसके लिए दिवा स्वप्न है। इस तथ्य की ओर वर्मा जी के उपन्यासों के विभिन्न

1- थके पाँव- पृ० 90-91

2- भूले बिसरे चित्र- पृ० 227,228,229,230

3- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 251

पात्रों के द्वारा संकेत किया गया है। जमशेद कावसजी का जगतप्रकाश के प्रति कथन द्रष्टव्य है - 'मेरी बात मानो तो तुम इस कुलसुम की बातों में न पड़ना। इसे राजनीति से शौक है, क्योंकि इसके बाप की दो मिलें हैं और यह एक-से-एक कीमती शौक कर सकती है। लेकिन शायद अभी तुम्हें जिन्दगी में संघर्ष करना है, इसलिए राजनीति से दूर ही रहने में भलाई है।'[1] राजनीति ही क्या किसी भी शौक या 'एक्स्ट्रा एक्टिविटीज़' में भाग लेना मध्यम-वर्गीय युवक के लिए कष्ट साध्य है क्योंकि उसकी 'जिन्दगी में संघर्ष' का एक छत्र राज्य है। जसवन्त कपूर भी जगतप्रकाश को यही सुझाव देता है -'तुम कहाँ फँस गए हो हम लोगों के बीच में जगतप्रकाश ? यह राजनीति तुम्हारे लिए खिलवाड़ नहीं बन सकेगी, क्योंकि तुम्हें जीवित रहने के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। संघर्षरत आदमी खिलवाड़ नहीं कर पाते, क्योंकि खिलवाड़ स्वत: उनके लिए संघर्ष बन जाते हैं।'[2] उपर्युक्त दोनों कथनों से समीक्षकों को भ्रम ऐसा होता है कि वर्मा जी मध्यमवर्गीय युवक के लिए राजनीति या अन्य ऐसी ही गति-विधियों में सक्रिय सहयोग देने की निषेधाज्ञा प्रस्तुत कर रहे हैं।[3] किन्तु ऐसा नहीं है। वर्मा जी ने जगतप्रकाश के माध्यम से यह दिखलाने का यत्न किया है कि यद्यपि मध्यवर्गीय व्यक्तियों की परिस्थितियाँ राजनीति इत्यादि में भाग लेने के लिए अनुकूल नहीं होतीं, तथापि इस वर्ग का युवक अपनी चेतना के कारण इन गतिविधियों में संलग्न होता है। यह चेतना कई प्रकार से कार्य करती है। इन गतिविधियों के द्वारा वे युवक समाज के विशिष्ट व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर अपना स्तर ऊँचा उठाने का यत्न करते हैं, जीवनगत संघर्षों से मुक्ति पाने का मार्ग ढूँढ़ निकालना चाहते हैं तथा अपने संघर्षों को भूलने का यत्न करते हैं। फिर भी अंतत: इन्हें असफलता ही मिलती है क्योंकि अपनी संवेदनशीलता के कारण ये अपने सिद्धान्त या पार्टी पर अडिग नहीं रह पाते, पूर्णतया आस्थावान नहीं रह पाते। अन्य सिद्धान्त या आदर्श उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने लगते हैं। इसलिए प्राय: ये राजनीति और ऐसी ही अन्य गतिविधियों में उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाते जिससे वे अपने समाज का नेतृत्व कर सकें। उनके संघर्ष उन्हें अन्दर से इतना खोखला बना देते हैं कि वे जीवन कीदोहरी भूमिका में प्राय: असफलता पाते हैं और निराशा उन्हें निष्प्राण बना

1- सीधीसच्ची बातें - पृ० 71

2- ,, ,, पृ० 148

3- द्रष्टव्य है- डॉ० ब्रजनारायण सिंह का कथन-'उक्त कथन में स्पष्टरूप से मध्य-वर्गीय संघर्षरत व्यक्तियों के लिए राजनीति स्पष्टरूप से दूर रहने का संकेत कथाकार का इष्ट प्रतीत होता है।'
-उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा-पृ० 288-89

देती है। 'सीधी सच्ची बातें' का जगतप्रकाश राजनीति और प्रेम दोनों में निराशा पाकर चुक जाता है और अपना दम तोड़ देता है। जगतप्रकाश की मृत्यु दिखलाकर उपन्यासकार ने थोड़ी अतिशयोक्ति से काम लिया है तथापि जीवन के यथार्थ की भूमिका पर इस बात से असहमत नहीं हुआ जा सकता है कि मध्यवर्ग का व्यक्ति राजनीतिक या सामाजिक गति-विधियों में उतनी एकाग्रता से अपने को लगा नहीं पाता, जैसा कि संघर्षों से मुक्त अभिजात वर्ग का व्यक्ति।

~~ठविल्ववर्ष०००~~ इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग का बड़ा ~~००००००००००~~ ही यथार्थ परक चित्रण किया है।

निम्नवर्ग :- वर्मा जी के उपन्यासों में निम्नवर्ग का समावेश बहुत कम हुआ है। उनके उपन्यासों में कुछ गिने-चुने पात्र हैं जिन्हें निम्न वर्ग से जोड़ा जा सकता है, किन्तु ध्यातव्य है कि उन्होंने अधिकांशतः पारिवारिक सेवकों के रूप में ही निम्नवर्ग का चित्रण किया है। इनमें 'भूले बिसरे चित्र' के घसीटे, झिनकी और भीखू, 'सीधी सच्ची बातें' का सुमेर और 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' का गनेसी विशेषरूप से ~~उल्लेख०ह~~ उल्लेख्य हैं। झिनकी और भीखू तो वर्मा जी के उपन्यास के कुछ महत्वपूर्ण पात्रों में से हैं जिनका चित्रण अत्यधिक सन्तुलित एवं यथार्थ भूमि पर हुआ है। झिनकी, ~~भीखू~~, सुमेर तथा ~~व~~ गनेसी सभी ~~सवव~~ स्वामिभक्ति, कर्तव्यपरायण और निष्ठावान सेवकों के रूप में चित्रित हुए हैं और उन पारिवारिक सेवकों का स्मरण करा देते हैं जिनका भारतीय परिवारों में विशिष्ट स्थान रहा करता था। इन लोगों से परिवार के सदस्यों को उतना ही आदर, ममता और सम्मान मिलता है जैसा कि परिवार के किसी निजी सदस्य से मिल सकता है। झिनकी ~~अपवके०सेवक०००००००००००००००००००००००००००००००००~~ ~~व~~ शिवलाल की सेविका और रखैल के रूप में चित्रित हुई है जो अपनी सेवा, आत्मीयता और विवेक के कारण ज्वालाप्रसाद की 'दूसरी माँ' होने का अधिकार प्राप्त कर लेती है। भारतीय परिवारों में सेवकों का स्थान भी कितना महत्वपूर्ण रहा है इसकी झलक मुंशी शिवलाल के जीवन के अंतिम वाक्य से मिल जाती है - 'यह झिनकी, यह तेरी दूसरी माँ है। मैंने इसे बड़ा कष्ट दिया है; इसकी कोई बात नहीं सुनी मैंने। तो इसे अब तेरी दया पर छोड़ रहा हूँ। तेरी सबसे अधिक सगी यही है।'[1] झिनकी का ही पुत्र ~~पुत्र~~ भीखू

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 172

ज्वालाप्रसाद के पुत्र गंगाप्रसाद पर अपार स्नेह रखता है तथा गंगाप्रसाद की पुत्री विद्या के विवाह के समय दहेज की समस्या से चिंतातुर परिवार को अपनी जन्म-भर की कमाई सौंपकर चिंतामुक्त कर देता है । 'सीधी सच्ची बातें' का सुमेर भी जीवन भर जगतप्रकाश और उसकी बहन की पूर्ण निष्ठा से सेवा करता है और जगतप्रकाश का इतना अधिक विश्वास प्राप्त करता है कि जगतप्रकाश अपनी सारी जमीन जायदाद उसे सौंप देता है । 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' के गनेसी को यद्यपि उपन्यासकार ने नाहरसिंह के पुराने साथी के रूप में चित्रित किया है तथापि वह अंतिम समय तक नाहरसिंह के परिवार की जिस प्रकार सेवा करता है उससे वह निम्नवित्तिय वर्ग का व्यक्ति ही प्रतीत होता है । गनेसी अपने सभी सुख-दुःख नाहरसिंह के परिवार [illegible] तक ही केन्द्रित कर लेता है । उसकी निष्ठा की पराकाष्ठा उस समय परिलक्षित होती है जब वह अपने साथी और आश्रयदाता नाहरसिंह की बेड़िन पत्नी को इसलिए हत्या कर देता है कि वह अपने कुल की मर्यादा गँवाकर भ्रष्टाचारिनी बन जाती है । नाहरसिंह की मृत्यु के पश्चात् भी उसकी निष्ठा में तनिक भी कमी नहीं आती । वह ममरी के अनाचरण से यतना दुःखी होता है कि वह ममरी और उसके प्रेमी सहोदरानंद दोनों की हत्या कर देता है । ममरी की हत्या के पश्चात् उसका कथन उसकी व्यथा और अपने साथी के प्रति भक्ति की उच्च सीमा का उद्घाटन कर देता है -" जो किया वह ठीक किया, नहरवा की आत्मा को शान्ति तो मिलेगी । अब तुम पवित्र हो गये केहर इस संगम पर आके- तुम्हारा कलंक मिट गया ।"[1]

भारतीय परिवारों के ऐसे स्वामिभक्ति और निष्ठावान परिचारों की परम्परा काफी बीते हुए समय की बात हो गयी है । आज घरेलू नौकर जिस क्षुद्रता और बेईमानी का परिचय देते हैं उसके परिप्रेक्ष्य में उपरि-चित्रित उदारता, प्रेम और ईमानदारी स्वप्नवत् प्रतीत होती है तथापि वर्मा जी ने इन पात्रों को जिस काल-सीमा में चित्रित किया है उसमें वह युगानुरूप एवं पूर्णतया तथ्यपरक है ।

वर्मा जी ने समाज के सभी वर्गों में व्याप्त कुरीतियों और उनसे उद्भूत समस्याओं का भी यथास्थान अंकन किया है । दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्या समस्या, जाति और

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 75

बेकारी आदि समस्याओं का वर्मा जी ने यथातथ्य चित्रण किया है। हमारे समाज में दहेज की अनिष्टकारिणी प्रथा ने जाने कितनी सुकुमार तरुणियों का जीवन अभिशप्त बना दिया है। 'भूले बिसरे चित्र' की विद्या, 'थके पाँव' की माया और 'सीधीसच्ची बातें' की यमुना दहेज प्रथा की करुण कहानी सुनाती प्रतीत होती हैं। विद्या ससुराल पक्ष से माँगा गया पूरा दहेज ले जाकर भी ससुराल में सुखी नहीं रह पाती क्योंकि उसमें स्वाभिमान और अत्याचार के प्रतिकार की भावना प्रबलरूप से मिलती है। वह अपने क्रूर ससुर और पति का घर हमेशा के लिए छोड़कर नहीं आ जाती वरन् ससुर द्वारा अनुचित बातें किये जाने पर वह अपने ससुर की पनही-पूजा करने के लिए दौड़ती है। विद्या अपने साहस से ससुर को परास्त कर देती है किन्तु उपन्यासकार का छोटा सा वाक्य 'और वह फूट पड़ी' उसकी मर्मान्तिक पीड़ा को व्यक्त कर देता है। उपन्यास में विद्या हिन्दू समाज में नारी जागरण का ज्वलंत प्रतीक बनकर आयी है। 'थकेपाँव' की मायापिता द्वारा दहेज के अभाव में एक दुहाजू से विवाह पक्का करने का विरोध करती है, इतना ही नहीं वह आर्थिक संघर्ष से जूझती अपनी माँ, भाभी आदि की स्थिति देखकर विवाह करने का ही विरोध करती है - 'अम्मा, मुझे विवाह ही नहीं करना है। देख तो रही हूँ तुम्हारी हालत, भाभीजी की हालत, बुआ जी की हालत। विवाह के अर्थ हैं स्त्री को नरक में ढकेल देना। और इस नरक में आप लोग मुझे नहीं ढकेल सकते - मर जाना उस नरक में पड़ने की अपेक्षा ज्यादा पसंद करूँगी।'[1] विवाह करने की अपेक्षा वह नौकरी करके अपने पैरों पर खड़े होने की इच्छा करती है। इसके विपरीत 'सीधी-सच्ची बातें' की यमुना अपने प्रेम का त्याग करके एक कुटिल और धोखेबाज आदमी के साथ अपने विवाह का विरोध नहीं कर पाती एक सामान्य भारतीय नारी की भाँति।

दहेज-प्रथा के कारण और कई समस्याओं का प्रादुर्भाव होता है। अच्छा दहेज न जुटा पाने के कारण जाने कितनी लड़कियाँ अविवाहित रह जाती हैं या मनोवांछित व्यक्ति से विवाह नहीं कर पातीं। ऐसी नवयुवतियों को छोटी-छोटी नौकरियाँ करके अपना जीवन-यापन करना पड़ता है या जीवन-भर दुःख की ज्वाला में जलना पड़ता है। नौकरी करने पर इन युवतियों को 'श्रम बेचने के साथ-साथ अपनी इज्जत भी बेचनी पड़ती है।'[2] अर्थात् समाज के दुश्चरित्र और कामपिपासु व्यक्ति उन्हें नौकरी देने के बदले उनके शरीर को ही खरीद लेना चाहते हैं। इन सभी स्थितियों का संकेत वर्मा जी ने अपने नारी-पात्रों के माध्यम से करा दिया है।

1- थके पाँव - पृ० 108

2- ,, पृ० 112

प्राय: देखा जाता है कि दहेज के अभाव में नवयुवतियों को अनमेल विवाह का शिकार बनना पड़ता है । वर्मा जी ने अनमेल विवाह से पीड़ित नारी की समस्याओं का अंकन करने के लिए `रेखा ` नामक एक पूरे उपन्यास की रचना कर डाली । यद्यपि रेखा ने डाक्टर प्रभाशंकर से अपनी इच्छा से प्रेरित होकर विवाह किया था तथापि उन दोनों की वयस् के अन्तर ने उनके जीवन को किस प्रकार विषाक्त बना दिया और एक को मृत्यु तथा एक को विक्षिप्तता को वरण करना पड़ा- इसे वर्मा जी ने `रेखा ` में बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है ।

समाज के गर्हित आर्थिक दुष्चक्र में फँसकर ये न जाने कितनी स्त्रियों को वेश्या बनकर अपना जीवन -यापन करना पड़ता है । वर्मा जी के उपन्यासों में वेश्याओं के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं । `तीन वर्ष ` और `भूले बिसरे चित्र ` में सरोज और मलका का चित्रण करते समय वर्मा जी का दृष्टिकोण अत्यंत सहानुभूतिपूर्ण रहा है । उनके दृष्टिकोण के अनुसार वेश्या वृत्ति के लिए हमारा पतित समाज ही उत्तरदायी है -" और सरोज के सम्बंध में मुझे यह कहना है कि उसकी वेश्या-वृत्ति का कारण तुम-जैसे अर्थ-पिशाचों के स्वार्थ तथा बर्बरता में मिलेगा, जो जीवित रहने के लिए आदमी को अपना शरीर तक बेच देने को विवश करते हैं । यदि तुम स्वयं अपने को देखो, तो मालूम होगा कि तुम सरोज से कहीं अधिक पतित हो । सरोज ने धन के लिए केवल अपना शरीर बेचा है, किन्तु तुमने तो अपनी आत्मा तक बेच दी है ।"[1] सरोज और मलका दोनों ही विवाह करके समाज में सम्मानीय जीवन व्यतीत करना चाहती हैं । मलका इसमें सफलता भी प्राप्त करती है लेकिन हमारे समाज के तथाकथित `बड़े लोग ` उसके मार्ग में बार-बार बाधा डालते हैं और सरोज स्वयं अपने प्रेमी से बार-बार अपमानित और लांछित होकर अपनी इहलीला समाप्त कर देती है । इसी प्रकार `आखिरी दाँव ` की चमेली वेश्या न होते हुए भी विषम आर्थिक परिस्थितियों के कारण वेश्याओं-सा जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाती है । इसके विपरीत `सीधी सच्ची बातें ` की शबनम वेश्याओं के कुत्सित, छल पद्म और चालाकी से भरे जीवन का चित्र प्रस्तुत कर देती है । आर्थिक विषमता से उत्पन्न एक अन्य समस्या जो हमारे राष्ट्र में निरंतर अपना प्रभुत्व जमाती जा रही है, वह है बेकारी की समस्या । पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करके भी नवयुवक जब उपयुक्त नौकरी नहीं तलाश कर पाते तो वह कुंठा और

1- तीन वर्ष- पृ० 211

नैराश्य से भर उठते हैं और उनका पारिवारिक जीवन कलह-क्लेशयुक्त हो जाता है। `थके पाँव' के केशव और मोहन के माध्यम से वर्मा जी ने इस समस्या का सफल अंकन किया है।

आर्थिक कशमकश एक शाश्वत समस्या है किन्तु जातिपाँति और अस्पृश्यता, जिससे विश्व के अधिकांश देश मुक्त हो चुके हैं, उनसे भी भारत का जनमानस आज तक अपना पीछा नहीं छुड़ा पाया है। अपने देश में सदियों पूर्व ऋषि-मुनियों ने वर्णाश्रम धर्म की स्थापना समाज में एक अनुशासन लाने के लिए की थी और उस समय कर्म के अनुसार उसके निर्धारण की व्यवस्था थी, किन्तु कालान्तर में कर्म के स्थान पर जन्म के अनुसार वर्ण के निर्धारण की व्यवस्था को मान्यता मिल गयी और हिन्दू धर्म की एक स्वस्थ परम्परा रोग बन गयी। वर्णाश्रम धर्म की विकृति की ओर इंगित करते हुए फ़रहतुल्ला कहता है - `हिन्दू समाज एक्सप्लायटेशन की नींव पर क़ायम है। यह बरहमन, क्षत्री, वैश, शूद्र, कितना ऊँच-नीच है। एक मौज करे, दूसरा पिसे।'[1] इतना ही नहीं जमाल अहमद के माध्यम से वर्मा जी ने हिन्दू धर्म की विगलित सामाजिक व्यवस्था पर जबर्दस्त कुठाराघात किया है - `तुम्हारे मज़हब में इन्सान की बेबसी, गरीबी और शोषण को एक सामाजिक सत्य के रूप में मंज़ूर कर लिया गया है। गरीबी और बेबसी वहीं होती है जहाँ शोषण है, ज़ुल्म है। ज़ुल्म और लूट-खसोट ये वैयक्तिक कमज़ोरियाँ हैं, समाज इनको रोकने के लिए बना है। समाज का फ़र्ज़ है कि वह ज़ुल्म और लूट-खसोट को रोके; लेकिन तुम्हारे समाज ने इस ज़ुल्म और शोषण को मंज़ूर करके ऐसे क़ानून बनाए हैं जिनमें इस ज़ुल्म और शोषण को खुली छूट है।'[2] हमारे समाज के उच्च वर्ण के लोग शूद्रों पर किस प्रकार अत्याचार करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। `भूले बिसरे चित्र' में शूद्रों को कुएँ से पानी न भरने देने की घटना का समावेश करके कथाकार ने उच्च वर्ण के सम्माननीय व्यक्तियों के अविवेक का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। किन्तु यह हमारे समाज का दुर्भाग्य है कि मुंशी रामसहाय जैसे प्रतिष्ठित और संस्कार व्यक्ति भी ऐसे शोषण का खुलकर विरोध करने के स्थान पर सामाजिक व्यवस्था का अनुकरण करने की वकालत करते दिखते हैं - `समाज छुआछूत को मानता है; समाज वर्गों में ऊँच-नीच का भेद-भाव करता है, यह सब हमें स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि हम सब समाज द्वारा शासित हैं, हम सबकी रक्षा समाज करता है। इन सामाजिक नियमों को तोड़ा नहीं जाता, इन नियमों को केवल बदला जाता है, और इन्हें बदलने की क्षमता महान त्यागियों और तपस्वियों में ही मिलेगी, हम जैसे

1- भूले बिसरे चित्र-पृ० 551 इस सम्बंध में `प्रश्न और मरीचिका' के 429, 447, 448 पृष्ठ विशेष द्रष्टव्य हैं।

2- सीधीसच्ची बातें - पृ० 256

साधारण गृहस्थों में नहीं ।"[1] और मुंशी रामसहाय द्वारा प्रकट किया गया विचार कुछ अंशों तक उचित प्रतीत होता है । भारत में मुसलमानों के आगमन के समय से पूर्व हिन्दू धर्म --- निहायत सड़ा-गला धर्म बन चुका था, जाँत-पाँत और छुआछूत से लदे हुए इस हिन्दू-धर्म में हर तरफ गुलामी-ही-गुलामी थी"[2] इसीलिए मुसलमान भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सके । कालान्तर में राजा राममोहनराय, दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गाँधी ने हिन्दू धर्म में सुधार के अथक प्रयत्न किये, हिन्दू धर्म के उस खोखलेपन को दूर करके का प्रयास किया जो इसे विनष्ट किए दे रहा था, महात्मा गाँधी ने आर्य समाज के सभी कार्यक्रमों को अपनाकर देश का उद्धार करना चाहा । इस सारी भूमिका का वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में उल्लेख किया है ।[3] किन्तु क्या इन महात्माओं के प्रयत्न सफल हुए । हमारे समाज के शिक्षित और सभ्य कहे जाने वाले व्यक्ति भी जाँति-पाँति और छुआछूत के कल्मष से अछूते नहीं हैं । 'भूले बिसरे चित्र' में गेंदालाल के माध्यम से वर्मा जी ने अछूतों की समस्या को उठाया है । गंगाप्रसाद जैसा अंग्रेज परस्त आदमी गेंदालाल का स्वागत इन शब्दों में करता है -"चमार ! तुम यहाँ इस कमरे में कैसे घुस आए ? निकलो यहाँ से, निकलो ।"[4] आज से लगभग 30 वर्षों पूर्व के काल के लिए यह दृश्य नितांत स्वाभाविक है । आज के शिष्ट समुदाय में छुआछूत का इतना नग्न रूप तो दृष्टिगत नहीं होता, किन्तु जाँति-पाँति और भेदभाव की विभीषिका ने बड़ी गहराई से हमारे समाज में अपनी जड़ें जमा ली है इसमें दो मत नहीं हो सकते ।

इसके अतिरिक्त वर्मा जी के उपन्यासों में अवैध सम्बंध की स्थितियाँ प्राय: दृष्टिगत होती हैं, उनके प्राय: सभी उपन्यासों में ऐसे पात्र मिल जाते हैं जो अपनी सामाजिक सीमाओं और परम्पराओं का अतिक्रमण करके अनैतिक प्रेम सम्बंधों को प्रश्रय देते हैं । कहीं-कहीं इन अवैध सम्बंधों का स्वाभाविक चित्रण हुआ है किन्तु कहीं-कहीं उपन्यासकार ने अतिरंजना का आश्रय लिया है और ऐसे स्थलों पर पाठक में अविश्वसनीयता का भाव उत्पन्न हो सकता है । जहाँ तक उच्च वर्ग की कामासक्ति का प्रश्न है उनके भोग-विलास से भरे जीवन में अवैध सम्बंधों को स्वाभाविक माना जा सकता है । उदाहरण के लिए राजा सत्यजित प्रसन्न सिंह का संतो से सम्बध(भूले बिसरे चित्र), वीरेश्वर प्रताप का अनेक स्त्रियों से संबंध(अपने खिलौने), रानी मानकुमारी का अनेक व्यक्तियों से घनिष्ठता का सम्बंध(सामर्थ्य और सीमा) स्वाभाविक धरातल पर चित्रित हुआ

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 16

2- सीधी सच्ची बातें - पृ० 178

3- द्रष्टव्य है - सीधी सच्ची बातें- पृ० 171,176,179

4- भूले बिसरे चित्र - पृ० 480

है, किन्तु जब हम देखते हैं कि जगतप्रकाश (सीधी सच्ची बातें) जैसा मध्यमवर्गीय युवक अपने सम्पर्क में आनेवाली प्रत्येक स्त्री के आकर्षण का बिन्दु बन जाता है तो कुछ आश्चर्य होता है। जगतप्रकाश लोकाचार की उपेक्षा करके कैसे प्रत्येक स्त्री से इतनी घनिष्ठता स्थापित कर लेता यह विचार पाठक के मन में आना स्वाभाविक है। उदयराज (प्रश्न और मरीचिका) यों सुन्दर, सम्पन्न एवं प्रसिद्ध युवक है तथापि प्रत्येक स्त्री का उसके प्रति आकर्षित होना, उसे विश्वसनीय मानकर उसके सामने खुल जाना उचित नहीं प्रतीत होता। ऐसा लगता है कि समस्त कथाक्रम को उदयराज से सम्बद्ध करने के लिए ही उपन्यासकार ने अनेक [illegible] स्त्रियों को उदयराज से प्रभावित दिखलाया है। इसी प्रकार गंगाप्रसाद (भूले बिसरे चित्र) और संतो की स्वच्छंदता भी आज से 30 वर्ष पूर्व के वातावरण के अनुकूल नहीं प्रतीत होती है। जबकि गंगाप्रसाद से मलका का सम्बंध इसलिए औचित्यपूर्ण लगता है क्योंकि उस समय रईसों का वेश्यागमन एक सामान्य बात थी। शिवलाल का किनकी को रखैल के रूप में रखना भी युग और परिवेश के प्रतिकूल नहीं है। चमेली और रामेश्वर (आखिरी दाँव), भवानीशंकर और सरस्वती (पतन), ज्वालाप्रसाद और जैदेई (भूले बिसरे चित्र), रानी श्यामला और ज्ञानचन्द (वह फिर नहीं आई) के अवैध सम्बंधों का चित्रण मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों पर आधारित है। वर्मा जी की 'रेखा' अपने अनैतिक सम्बंधों के कारण ही हिन्दी जगत में चर्चा और विवाद का विषय बनी।[1] 'रेखा' यथार्थतः अपने समाज की सामान्य नारी प्रतीत नहीं होती तथापि एक 'व्यक्ति' के रूप में उसकी वासनात्मक विकृति अस्वाभाविक और अमनोवैज्ञानिक कदापि नहीं कही जा सकती। अन्तर्द्वन्द्व से जूझती रेखा विशेष स्थितियों में अपने ऊपर संयम नहीं रख पाती, अपने संकल्प पर दृढ़ नहीं रह पाती और अपने पति के प्रति विश्वासघात करने को विवश हो जाती है, इसी से उसकी पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति हो सकी है। 'वीमेन्स लिब' के युग में रेखा का पर-पुरुषों से सम्बंध अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता।

सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश

वर्मा जी के उपन्यासों में राजनीतिक वातावरण के अनुपात में सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश का समावेश अत्यल्प मात्रा में हुआ है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि वर्मा जी नियतिवाद में पर्याप्त आस्था रखते हुए भी प्रगतिशील विचारों से प्रभावित रहे

1- द्रष्टव्य है - नवभारत टाइम्स, बम्बई (दैनिक समाचार पत्र) मंगलवार 25 जुलाई, 1972 में प्रकाशित 'भगवतीचरण वर्मा की 'रेखा' का रेखांकन' नामक एक गोष्ठी की रिपोर्ट।

हैं। उनके उपन्यासों के पात्र अधिकांशत: लीक से हटकर नवीन सांस्कृतिक जागरण से प्रभावित दिखते हैं। वर्मा जी ने जिस युग को अपने उपन्यासों में चित्रित किया, वह समय देश के सांस्कृतिक पुनुरुत्थान के महत् प्रयत्नों से ओतप्रोत था। ब्रह्म समाज के अन्तर्गत राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, आर्य समाज के अन्तर्गत स्वामी दयानंद सरस्वती तथा रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद के सद्प्रयासों से देश में नव-जागृति, स्वाभिमान और भारतीय संस्कृति के नव संस्कारों का सूत्रपात हो चुका था। वर्मा जी के उपन्यासों में कुछ स्थलों पर ही इनका उल्लेख मिलता है। `भूले बिसरे चित्र` में स्वामी जटिलानंद और आर्य-समाज के अधिवेशन के माध्यम से वर्मा जी ने आर्य समाज की गतिविधियों का आभास कराने का प्रयत्न किया है।[1] `सीधी सच्ची बातें` में लाला देवराज तथा `भूले बिसरे चित्र` के पण्डित सोमेश्वरदत्त `आर्य समाज` के अनुयायी और समर्थक हैं उनके आचार विचार में आर्यसमाज का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। सोमेश्वरदत्त का कथन है "जो कुछ हो रहा है वह अच्छा ही हो रहा है। किसी तरह इन म्लेच्छ यवनों का शासन तो अपने ऊपर से हटा, देश की अराजकता दूर हुई, जुल्मों के से त्राण मिला, हर जगह अमन-आमान फैला। भला इसे बुरा कौन कह सकता है। लेकिन इस सबके साथ बात ज़रूर है - विदेशी हर हाल में विदेशी ही रहेगा।"[2] ब्रह्म समाज और आर्यसमाज ने देश का धार्मिक खोखलापन दूर करने का यत्न किया था इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं - "राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और न जाने कितने लोग। इन लोगों ने हिन्दू धर्म में न जाने कितने सुधार किए, हिन्दू धर्म का वह खोखलापन, जो इसे खाए जा रहा था, इन्होंने दूर किया। ब्रह्म समाज ने ईसाइयत से मोरचा लिया, आर्यसमाज ने इसलाम से मोरचा लिया।"[3] लेकिन यह युग संक्रमण का था कि अनेक विचारधाराएँ अपना प्रभाव डालकर अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगी थीं। एक तरफ आर्यसमाज की ओर से जोरजबर्दस्ती से मुसलमान या ईसाई बनाए लोगों के शुद्धीकरण का काम चल रहा था तो दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों द्वारा बनाए गये ईसाई यूरोपियन समाज में मिल जाने के लिए लालायित

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 318

2- ,, पृ० 238- सोमेश्वरदत्त के ये विचार दयानंद सरस्वती के विचारों से तुलनीय हैं - "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अपनी प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता।" - सत्यार्थ प्रकाश, पृ० 154

3- ~~भूले० बिसरे० चित्र~~ सीधी सच्ची बातें- पृ० 179

दिखते थे। जबकि यूरोपियन 'नेटिव क्रिश्चियन' से उतनी ही घृणा करते थे जैसी कि हिन्दुओं से। 'भूले बिसरे चित्र' के तीसरे खण्ड के प्रथम परिच्छेद के प्रारंभिक चार-पाँच पृष्ठों में वर्मा जी ने इस धार्मिक उथल-पुथल का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार स्वामी जटिलानंद से शास्त्रार्थ के प्रसंग से भी धार्मिक उखाड़-पछाड़ के वातावरण का सुन्दर निर्माण हुआ है। इतना ही नहीं, स्वामी जटिलानंद का पूर्ण इतिहास बताते हुए गंगाप्रसाद आर्यसमाज के प्रति लोक धारणा की अभिव्यक्ति करा देता है - 'भाई, यह आर्य-समाज भी खूब है। एक से-एक जाहिल और गँवार इकट्ठे हुए हैं इसमें।'[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने आर्यसमाज आदि संस्थाओं द्वारा सांस्कृतिक पुनरुत्थान के सद्प्रयत्नों का उल्लेख तो किया ही है, साथ ही विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा उसके विरोध का संकेत भी कर दिया है। यहाँ तक कि सनातन धर्मियों द्वारा भी आर्यसमाज का विरोध हो रहा था, यह भी पण्डित गोवर्धन शास्त्री के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है।[2]

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में हिन्दू धर्म की सड़ी-गली परम्पराओं तथा व्यवस्थाओं का डटकर विरोध किया है, और उसमें भी उनका सबसे अधिक आक्रोश वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति व्यक्त हुआ है। यद्यपि इस सम्बंध में विस्तार से विचार किया जा चुका है। आज धर्म के नाम पर जो छद्म और ढोंग चल रहा है उसका भी वर्मा जी ने उपन्यासों में चित्रण किया है। हिन्दुओं में परजाति के व्यक्ति का बनाया खाना निषिद्ध है, इसीलिए जब जाति की कहारिन छिनकी मुंशी शिवलाल की खिचड़ी बना देती है तो राधेलाल और उनकी पत्नी उसकी प्रताड़ना करते हैं, यद्यपि उसी छिनकी को रखैल के रूप में रख जाने का कोई विरोध नहीं करता। हमारी व्यवस्था भी विचित्र है जो किसी छोटी जाति के व्यक्ति द्वारा पूड़ी तरकारी (पक्की रसोई) बनाए जाने को तो बुरा नहीं मानती लेकिन दाल रोटी, खिचड़ी आदि (कच्ची रसोई) बनाए जाने और उच्च जाति द्वारा उसे खाए जाने को पाप समझती है।[3] ऐसे ही छोटे-छोटे अंधविश्वास प्राय: हमें बड़ी-बड़ी असुविधाओं और परेशानियों में डाल देते हैं।

आज हमारे यहाँ धर्म के नाम पर भजन-कीर्तन का आयोजन होता है जहाँ बड़े-बड़े शिक्षित परिवारों की स्त्रियाँ पाखंडियों के बीच अपना समय बर्बाद करती हैं।[4] इतना ही

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 323

2- ,, ,, पृ० 341

3- ,, ,, पृ० 117,18,19,20,21

4- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 55

नहीं कुछ स्त्रियाँ बने हुए साधुओं के संसर्ग से अपना सतीत्व भी गँवा देती हैं।[1] एक ओर धर्म की आड़ में ऐसा ढोंग और दुराचार चलता है तो दूसरी ओर धर्म के बंधन से जकड़ा व्यक्ति अपने प्रति पूर्ण समर्पित और ईमानदार को प्रश्रय देने में असमर्थता का अनुभव करता है।[2] कुछ अर्थाकांक्षी व्यक्ति धर्म के माध्यम से धन अर्जित करने की योजना बनालेते हैं। मेवालाल जबर्दस्ती म्यूनिसपैलिटी की जमीन हथियाकर उस पर आलीशान मन्दिर बनवाकर सैकड़ों रुपये की मासिक आय करने लगता है और उसका पुत्र राधेश्याम उसी मन्दिर के नीचे तहखाना बनवाकर सोना चाँदी इकट्ठा करने लगता है - इस विचार से प्रेरित होकर कि अगर कभी कुछ लूट-पाट होती है तो ठाकुरद्वारे को कोई हाथ भी नहीं लगायेगा।[3]

धर्माडम्बर के अतिरिक्त वर्मा जी के उपन्यासों में पुत्र-जन्म तथा मृत्यु के समय होने वाले रीतिरिवाजों का वर्णन भी मिलता है। पुत्र-जन्म के समय माँ और बच्चे पर न्यौछावर करके गरीबों में बँटवाने, साइत विचरवाने के लिए पण्डित बुलवाने, गौनहारिन व रोशन-चौकी आदि द्वारा खुशियाँ मनाने का उल्लेख मिलता है।[4] मृत्यु के समय गंगाजल पिलाने,जमीन पर लिटाने, गोदान कराने तथा महामृत्युन्जय पाठ कराने आदि का वर्मा जी ने अपने कथा-साहित्य में उल्लेख किया है।[5] पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार जीवन-यापन करने वाले भारतीयों में जन्म-दिवस के समय मोमबत्ती जलाना तथा केक काटने की प्रथा का प्रचलन भी मिलता है।[6]

इन छोटे-छोटे विवरणों के द्वारा वर्मा जी के उपन्यासों में भारतीय समाज का बहुरंगी वातावरण पाठक के मनस्-पटल पर उभर कर आ जाता है। अपने समाज के लोगों, रीतिरिवाजों, समस्याओं और विशेषताओं को देखकर पाठक का मन उपन्यास से तादात्म्य स्थापित कर लेता है और उपन्यास को पढ़ते समय एक चिर- परिचित वातावरण देखकर पाठक को रुचि आने लगती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ राजनीतिक विवरणों को छोड़कर भारतीय समाज के विविध पक्षों को इतने संक्षेप, और कलात्मक ढंग से प्रस्तुत

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं - पृ0 72

2- भूले बिसरे चित्र- पृ0 461

3- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ0 22,38

4- भूले बिसरे चित्र- पृ0 444

5- ,, ,, पृ0 599

6- ,, ,, पृ0 647

किया गया है कि वह कथा के प्रवाह में कहीं भी बाधक नहीं बनते ।

वर्मा जी के उपन्यासों में स्थानीय वर्णन प्राय: कम मिलते हैं । उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचलों का चित्रण करते समय भी वर्मा जी की दृष्टि मुख्यरूप से कथा और विषय पर ही केन्द्रीभूत रही है तथा स्थानीय वर्णन पीछे छूट गया है ।

पहले कहा जा चुका है कि 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'भूले बिसरे चित्र', 'सीधीसच्ची बातें', तथा 'प्रश्न और मरीचिका' नामक अपने वृहद्काय उपन्यासों के माध्यम से वर्मा जी ने सन् 1885 से सन् 1962 तक के भारत का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत कर दिया है । इस युग में भारत की राजनीतिक गतिविधियों के कारण वर्मा जी के प्रमुख उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश का स्वर अधिक मुखर हो गया है और उसके कारण कहीं-कहीं उपन्यास बोझिल हो उठे हैं । इसके अतिरिक्त उनकी निजी विचारधारा के कारण उनमें कहीं कहीं एकपक्षता का दोष भी आ गया है तथापि उनकी विचारधारा ने समस्या के दूसरे पहलू को बिल्कुल मूक नहीं कर दिया है । पात्रों के विचार -विमर्श के द्वारा विभिन्न समस्याओं के विविध पक्ष प्रकट किये गये हैं, जिनमें वर्मा जी की विचारधारा का समर्थन प्रमुख पात्रों के द्वारा हुआ है ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्मा जी के उपन्यासों में भारत का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक धार्मिक व सांस्कृतिक परिवेश जीवंत रूप में व व्यक्त हुआ है । इन उपन्यासों में 'वर्णन की सशक्तता', रोचकता, यथातथ्यता एवं विश्वसनीयता की विशेषताओं का सुन्दर प्रतिफलन पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में पूर्ण सक्षम है ।

किन्तु समीक्षा के नये आयामों में परिवेश के महत्व को स्वीकार करते हुए भी उपन्यासकार के लिए कुछ अन्य विशिष्टताओं की अपेक्षा की गयी है, जिनके समावेश से वह अपने युग के उच्चतम और क्लासकी ' साहित्य के सृष्टाओं की श्रेणी में बैठ सकता है । डॉ० रघुवंश ने अपने एक लेख में लिखा है - 'उपन्यासकार के लिए परिवेश का महत्व है, एक प्रकार से वह उसका आधार है । वह न केवल अपनी रचना का सारा कच्चा माल वहाँ से जुटाता है, वरन् अनुभव के विभिन्न स्तरों के बीच से अपनी रचना दृष्टि विकसित करता है ।[1] 'हमारा उपन्यास : परिवेश और भारतीयता ' के विद्वान लेखक ने परिवेश की जागरूकता के आगे 'परिवेश की मानवीय परिस्थितियों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के द्वारा सम-सामयिकता के बोध तक पहुँचने ' की आवश्यकता पर बल दिया है और बताया है कि मुंशी

1- डॉ० रघुवंश, हमारा उपन्यास : परिवेश और भारतीयता, 'धर्मयुग' - 10 मई 1970, पृ० 15

प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, अमृतलाल नागर, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि उपन्यासकारों ने परिवेश के यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। साथ ही उन्होंने यह उल्लेख भी कर दिया है कि 'उनमें भगवतीचरण कथाकार अधिक हैं।' इस प्रसंग में हमारा मत यह है कि भगवतीचरण कथाकार पहले है, इस तथ्य से मुकरा नहीं जा सकता, तथापि उनके परवर्ती उपन्यासों में कथा, परिवेश और शिल्प का ऐसा कलात्मक संयोजन हुआ है कि किसी एक तत्व को दूसरे पर हावी होते नहीं देखा जाता। परिवेश की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण वर्मा जी के उपन्यासों में 'भूले बिसरे चित्र' में कथातंतु अधिक मुखर है किन्तु 'सीधी सच्ची बातें', 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' तथा 'प्रश्न और मरीचिका' में उपन्यासकार ने सुगठित कथा के माध्यम से चित्रित युग की अपने दृष्टिकोण से व्याख्या प्रस्तुत की है। इस निष्कर्ष की पुष्टि में हम कुछ विद्वानों के कथनों को प्रस्तुत कर देना समीचीन समझते हैं -'सीधीसच्ची बातें' के सम्बंध में श्री मन्मथनाथ गुप्त का मंतव्य द्रष्टव्य है - 'सीधी सच्ची बातें' में भगवती चरण वर्मा ने अपनी कला को नई ऊँचाई तक पहुँचा दिया है, जिस तक केवल तीन अन्य उपन्यासों ने यानी 'गोदान', 'झूठा सच' और 'मैला आँचल' ने पहुँचकर हिन्दी उपन्यास को विश्व-साहित्य के स्तर पर पहुँचा दिया है। -------- 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास में भगवतीबाबू ने त्रिपुरी कांग्रेस से, जिसके अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस थे, लेकर गाँधी की हत्या तक के विराट् विस्फोटक युग का वैज्ञानिक वर्णन किया है।'[1] 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' के बारे में किसी आलोचक ने लिखा है -"आज की भ्रष्ट राजनीति और उससे विगलित हो रहे व हमारे युग के सामाजिक जीवन में जो दम घोंटनेवाली सड़न आ गई है उसका पर्दाफाश करने में उपन्यासकार को पूर्ण सफलता मिली है।"[2] 'प्रश्न और मरीचिका' के सम्बंध में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का कथन भी प्रस्तुत है - " प्रश्न और मरीचिका स्वतंत्रता के पंद्रह वर्षों का आंशिक ब्लू प्रिंट(खाका) है।"[3]

डॉ० रघुवंश के अनुसार उपन्यास-रचना की तीसरी प्रमुखतम अपेक्षा 'सर्जनात्मक स्तर पर रचना की एक दृष्टि अथवा मूल्य दृष्टि' की है। इस परीक्षण में रघुवंश जी ने अमृतलाल नागर और यशपाल को पीछे छोड़ प्रेमचन्द जी को महत्वपूर्ण बताया है और

1- मन्मथनाथ गुप्त- सफल युगान्तकारी राजनीतिक उपन्यास 'सीधी सच्ची बातें', 'प्रकाशन समाचार' फरवरी 1968- पृ० 17

2- प्रकाशन समाचार-मार्च-1970, पृ० 33

3-

जैनेन्द्र व अज्ञेय को भी अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा स्थान पुरस्कृत किया है। इस सम्बंध में हमारा निष्कर्ष यह है कि वर्मा जी भले ही प्रेमचन्द, जैनेन्द्र व अज्ञेय की ऊँचाइयों को अभी तक न छू सके हों, किन्तु वर्मा जी ने अपने चतुर्दिक फैले जनसमुदाय के अनुभवों के आधार पर देश के व्यापक यथार्थ को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया है। उपन्यास के पात्र इस यथार्थ को जिस रूप में जीते हैं, उससे नव-निर्माण की आकांक्षा का स्वर प्रस्फुटित हो जाता है, हाँ! प्रेमचन्द क जी की भाँति आदर्श का आग्रह वर्मा जी के उपन्यासों में प्रत्यक्षत: कहीं नहीं दिखता।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्मा जी ने केवल कथा के अलंकरण के लिए परिवेश का सम्बल ग्रहण नहीं किया है वरन् उन्होंने कथा के सुदृढ़ आधार के रूप में देश के सुविस्तृत परिवेश का ऐतिहासिक प्रस्तुतीकरण अपने उपन्यासों में किया है।

00000
000
0